स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. ≡) तीन आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) प्राणायाम .... }
(५) आसन .... } छप रहे हैं।
(६) ब्रह्मचर्य- .... }

आगम-निबंध-माला । ग्रंथः ६

ॐ

वैदिक-सर्प-विद्या ।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

द्वितीय बार २०००

संवत् १९७८, शके १८४३, सन १९२१

विद्याओंका उद्धार ।

वेदके मंत्रोंके मननसे अनेक विद्याओंका उद्धार हो सकता है। इस लिये सर्प विद्याके मंत्र इस लेखमें पाठकोंके सन्मुख रखते हैं, आशा है कि, पाठक इनका विचार करके "सर्प-विद्या" का विकास करनेमें सहायता देंगे।

इस देशमें प्रतिवर्ष २५००० मनुष्य सर्पदंशसे मरते हैं। इसलिये इस विद्याका विचार और प्रचार होना अत्यंत आवश्यक है। पूर्ण आशा है कि विचारी वैद्य इस विषयमें सहायता करेंगे।

औंध (जि. सातारा.)
९ मार्गशीर्ष,
संवत् १९७८

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल.

मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, गिरगांव-मुंबई.

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर स्वाध्याय मंडल
औंध, (जि. सातारा.)

(१) भूमिका।

वैदिक कालकी पाठविधिमें अध्ययन करने योग्य विषयोंमें "सर्प-देव-जन-विद्या" इस नामकी एक विद्या थी। इस विद्याके विषयमें छांदोग्य उपनिषद्में निम्न वचन हैं—

> अध्येमि..........देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां,
> भूत-विद्यां, क्षत्र-विद्यां, नक्षत्र-विद्यां,
> सर्प-देवजन-विद्याम्-.......... ॥ २ ॥
>
> छां. उ. ७।१।२; ७।१।४; ७।२।१; ७।७।१

इस वचनमें "सर्प-देव-जन-विद्या" शब्द है। यह एक विद्या है। इस समय यह विद्या प्रायः नष्ट हो चुकी है। साथ साथ उक्त वचनमें लिखीं हुई अन्य विद्यायेंभी पूर्ण रूपसे नष्ट होगई है!! पाठक यहां देख सकते हैं कि, वैदिक कालमें कितनीं विद्यायें थीं, जिनका नामनिशान भी इस समय नहीं है।

"सर्प-देव-जन-विद्या" का पता इस समय लगना बडा ही मुश्कील है, इसके समान कोईभी विद्या आज कल किसी रूपमें और किसी देशमें विद्यमान नहीं है। प्राचीन ऋषिकालमें ये सब विद्यायें वेदसे ही निकली थीं। "सृष्टिके प्रारंभमें वेदसे सब विद्यायें

बाहर आतीं हैं और प्रलय कालमें सब विद्यायें गुप्त होतीं हैं" ऐसा कई कहते हैं। जो विद्या वेदमें होगी, उसको जाननेके लिये सृष्टिके प्रारंभ के समयकी प्रतीक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; वेदका निरंतर मंथन करनेसे वह विद्या वेदसे ही बाहिर आसकती है । इस कार्यके लिये वेदका निरंतर आलोचन होनेकी आवश्यकता है; प्रायः सब आर्षविद्यायें जो नष्ट हो चुकीं हैं, इसी रीतिसे पुनः ज्ञात हो सकतीं हैं । इस विषयमें जो कठिनता है, वह केवल वेदके निरंतर अभ्यास होनेकी ही है । दूसरी कठिनता पक्षपात रहित होकर वेदके प्रेमके साथ निष्ठायुक्त अंतः-करणसे अध्ययन होनेकी है । इस प्रकारका अध्ययन जब कभी प्रारंभ होगा, तब वैदिक विद्यायेंभी प्रकाशित हो सकतीं हैं । परंतु यह कैसे हो सकता है ? प्राचीन कालमें वेदपाठियोंको चिंता नहीं थी, इसलिये वे निश्चित होकर अपनी आयु विद्याकी वृद्धिके लिये अर्पण कर सकते थे । जब कभी वह अवस्था होगी, तबही वेदसे विविध विद्याओंका प्रकाश हो सकता है ।

इस समय सर्पविद्याके थोडेसे मंत्र इस लेखमें एकत्रित किये हैं; इनका विचार करनेसे आशा हो सकती है कि, जब कभी इनका विचार पूर्ण होगा, तब "सर्प-विद्या" जानी जा सकती है, और "सर्प-विद्या" के जाननेके पश्चात् "सर्प-देव-जन-विद्या" जाननेका मार्गभी सुगम हो सकता है। कृपा करके पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंको देखेंगे, तो अधिक लाभ हो सकता है; क्योंकि एकके विचार की अपेक्षा यदि अधिक विद्वानोंके विचार इकट्ठे

होंगे, तो बहुत लाभ होना संभव है । इतनी प्रार्थना करनेके पश्चात् विषयका प्रारंभ करता हूं—

(२) 'सर्पों' के नामोंका विचार।

सर्पोंके कई नाम वेदमें तथा संस्कृत भाषामें आगये हैं। कई नाम केवल वेदमें अथवा विशेषतः अथर्ववेदमेंही हैं; ऋग्यजुःसाम इन तीनों वेदोंमें सर्पोंके विषयमें बहुतही थोडा विचार है। जो विशेष लिखा है वह अथर्ववेदमेंही है। जो नाम वेदोंमें हैं, इनमेंसे कई नाम आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें नहीं दिखाई देते, तथा जो नाम आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें हैं उनमेंसे कई नाम वेदमें नहीं हैं।

"सृप्" धातु का अर्थ "भूमिके साथ साथ जाना, रेंगना" ऐसा है। इस धातुसे "सर्प" शब्द बनता है। "भूमिके साथ साथ रेंगने अथवा चलनेवाला प्राणी" यह इस सर्पका धात्वर्थ है। सर्प जातिके सबही प्राणी इसी प्रकार चलते हैं। "नाग" यह दूसरा शब्द सर्पवाचक है। "नाग" शब्दके दो अर्थ हैं, (नगे भवः नागः) जो नग अर्थात् पर्वतमें होता है वह नाग कहलाता है। (न गच्छति इति अ-गः। न+अगः=नागः) जो स्थिर नहीं रहता उसको नाग कहते हैं। सर्प पहाडोंमें होते हैं और बडे चपल होते हैं इस कारण उनको "नाग" शब्द प्रयुक्त होता है। सर्पके लिये निम्न शब्द वाग्भट्टमें दिये हैं—

दर्वीकरा मंडलिनो राजीमंतश्च पन्नगाः ॥
त्रिधा समासतो भौमा विभिद्यंते त्वनेकधा ॥

वाग्भट अ. हृ.

"दर्वीकर, मंडलिन्, राजीमान् ये तीन मुख्य जातियां हैं, परंतु गौण जातियां अनेक हैं । (१) "दर्वी-कर" यह नाम उन सर्पोंका होता है कि जिसको कडछी के समान फणा होती है, इसको फणीभी कहते हैं । (२) "मंडलिन्" सर्प वह होता है कि गोल चक्कर लगाकर बैठता है, [मराठी भाषामें इसको 'कवड्या साप' कहते हैं] (३) "राजीमान्" जिस सर्पपर (राजी) रेषायें होतीं हैं । येही सर्पोंकी मुख्य तीन जातियां हैं । इसके अतिरिक्त निम्न नाम जातिवाचकही प्रतीत होते हैं—

अनंतो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः ॥
कर्कोटकः कुलिकः शंख इत्यष्टौ नागनायकाः ॥
अनंतो वासुकिः शेषः पद्मनाभश्च कंबलः ॥
शंखपालो धार्तराष्ट्रस्तक्षकः कालियस्तथा ॥

"(१) अनंत, (२) वासुकि, (३) पद्म, (४) महापद्म, (५) पद्मनाभ, (६) तक्षक, (७) कर्कोटक, (८) कुलिक, (९) शंख, (१०) शेष, (११) कंबल, (१२) शंखपाल, (१३) धार्तराष्ट्र, (१४) कालिय" इतनीं सर्पकीं और जातियां संस्कृत ग्रंथोंमें लिखीं हैं । इनमें पूर्वोक्त तीन जातियां मिलानेसे सतरह जातियां होतीं हैं । "सर्प" नाम संपूर्ण सर्प जातिका समझना उचित है तथा "नाग" नाम फणी जातीका साधारण नाम समझना योग्य है ।

सांप्रतकालमें भरतभूमिमें नाग तथा अन्य बहुत सर्प जातिके प्राणी हैं । अफ्रिकामें "अस्प (Asp) तथा विषसिंचक नाग

(Spitting Cobra)" होते हैं । विषसिंचक नाग प्राचीन कालमें इस देशमें थे । ये बडे भयानक होते हैं और दूरसे ही विष विशेषकर आंखमें फेंक देते हैं, इनका विष इतना प्रखर होता है कि दूरसे फेंके हुए विषसेभी प्राणी मर जाता है ! !

साधारणतः नाग चार हाथ लंबा होता है, परंतु बंगालके सुंदर बनमें दस बारह हाथ लंबे नाग होते हैं । कई केवल दो हाथही लंबे होते हैं । बंगालके नाग बड़े बलवान होते हैं, इसलिये उनको पकडनेके लिये ३, ४ मनुष्य आवश्यक होते हैं परंतु अन्य छोटे नागोंको एक मनुष्यभी पकड सकता है ।

कई कहते हैं कि, सर्पोंकी २१ जातियां हैं, परंतु उनमें केवल चार जातीके सर्पही विषयुक्त होते हैं, अन्य विषहीन ही होते हैं । परंतु वास्तविक बात यह कि प्रायः प्रत्येक सर्प विषयुक्त ही होता है, किसीमें थोड़ासा विष होता है और कईयोंमें प्रखर और भयानक विष होता है । जिसके विषसे मनुष्यादि प्राणी मर जाता है, उसको "विष-मय-सर्प" कहते हैं, परंतु थोडे विषवाले सर्पके दंशसे नहीं मरता इसलिये उसको निर्विष कहते हैं ।

नागकी फणा के ऊपर एक प्रकारका चिन्ह बीचमें होता है, इसी जातिके कई स्थानके सर्पोंपर नहीं भी होता । ये ही सर्प भयानक विषसे युक्त होते हैं । सर्प जातिके बहुत प्राणी " चूप् " ऐसा आवाज सूक्ष्म रीतिसे करते हैं । नाग भी यह आवाज करता है, परंतु नागजातीके सर्पोंका खास आवाज " फूत्कार अथवा

फुस्स् ” शब्द द्वारा बताया जाता है। कई नागोंका यह फूत्कार चार पांचसौ हाथोंके अंतर पर भी अच्छी प्रकार सुनाई देता है। यह सामान्य वर्णन हुआ, अब वेदमें सर्पोंका वर्णन देखिये—

(३) वेदमें सर्प वर्णन।

अथर्व वेदके दशम कांडमें सर्पोंके बहुतसे नाम आते हैं, देखिये—

१ उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं वारुग्रम् ॥ ४ ॥
२ पैद्वो हंति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ॥
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५ ॥
३ अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा॥
४ अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ॥ १० ॥
५ इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥
६ हता स्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥
७ इंद्रो मेहिमरंधयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ॥
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥

अथ. १०।४

“ (१) (अहीना) सर्पोंका विष शुष्क काष्ठके समान कमजोर हो जावे ॥ (२) पैद्व नामक घोडा कसर्णील, श्वित्र, असित, रथर्वी, और पृदाकु सर्पोंका सिर फोडता और उनको

मारता है। (३) इस खेत में स्त्री सर्प और पुरुष सर्प रहते हैं। (४) अघाश्व और स्वज का यह औषध है। (५) ये पृदाकु पीछे हैं। (६) तिरश्चिराजी मरगये, पृदाकु का चूर्ण होगया; दर्वी, करीकत, श्वित्र और असित इन सर्पोंको दर्भोंमें ठोक दो। (७) इंद्रनें पुरुष पृदाकु सर्प तथा उसकी स्त्री पृदाकी को तथा स्वज, तिरश्चिराजी, कसर्णील और दशोनासि सर्पोंको पकडा है।

इन मंत्रोंमें सर्पोंकी जातियोंके निम्न नाम आ गये हैं—(१) अहि, (२) कसर्णील, (३) श्वित्र, (४) असित, (५) रथर्वी, (६) पृदाकु, (७) पृदाकी, (८) अघाश्व, (९) स्वज, (१०) तिरश्चिराजी, (११) दर्वी, (१२) करीकत, (१३) दशोनसी, ये सब शब्द इस सूक्त में सर्प जातिके वाचक हैं। पाठक यहां आश्चर्य न करें कि, तिरश्चिराजी आदि शब्द अन्यत्र अन्य पदार्थोंके वाचक हैं, और, यहां सर्पवाचक कैसे हो सकते हैं? वैदिक शब्द गुणबोधक होनेके कारण जहां जहां वह गुण होता है, वहां उस शब्द का प्रयोग होता है। अन्यत्र " सर्प और नाग " ये शब्द जंगली और पहाडी लोकोंके वाचक होते हुए भी यहां सर्प जातिके वाचक हैं। इसी प्रकार सब शब्दोंके विषयमें समझना उचित है। जब यह वैदिक शब्द-प्रयोगोंकी विशेषता समझमें आजायगी, तब कोई संदेह नहीं हो सकता, तबतक अर्थके विषयमें संदेह हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं!! पाठक जैसा जैसा वेदका अभ्यास करेंगे वैसा

वैसा उनका परिचय इस शब्दार्थ–व्यवस्था के साथ हो जायगा और तत्पश्चात् इस समयका संशय सतायेगा नहीं। अस्तु।

उक्त सर्प वाचक शब्दोंमें कई शब्दोंका अर्थ समझमें आता है, परंतु कई शब्दोंके विषयमें अबतक अर्थ निश्चय नहीं हुआ; जिनका अर्थ निश्चित हुआ है उनका अर्थ नीचे दिया है।—

वैदिक नाम	लौकिक संस्कृत के नाम	आशय
१ अहिः	अहिः	घातक सर्प
२ श्वित्रः		सफेद ,,
३ असितः		कृष्ण ,,
४ तिरश्चिराजी	राजिमान्	तिरच्छी रेषावाला सर्प
५ दर्वी	दर्वीकर	कडछी के समान फणासे युक्त सर्प.
६ दशो–नसी		दंशसे नाश करनेवाला विषसर्प.

इतने शब्दोंका उक्त भाव इस समय मुझे ज्ञात हुआ है, ये शब्द सरल और सुगम ही हैं। अन्य शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले लक्षण उक्त शब्दोंसे अबतक मुझे ज्ञात नहीं हुए, यदि कोई इस विषयमें अधिक प्रकाश डाल सकता है तो उसका लेख अवश्य प्रसिद्ध किया जायगा। पूर्वोक्त संस्कृत श्लोक के सर्प वाचक शब्दोंमें एक शब्द "कंबल" है, यह शब्द प्रायः केशवाले महा सर्पका बोधक होगा, तथा पूर्व मंत्रोक्त "पृदाकु" शब्द

महा अजगर का वाचक होनेकी संभावना है। अन्य शब्द निश्चित लक्षण करने की दृष्टिसे इस समय मेरे लिये दुर्बोधही हैं। यदि कोई विद्वान इस अज्ञान को दूर कर सकता है, तो उसके बडे उपकार हो सकते हैं।

उक्त प्रत्येक शब्द नागकी प्रत्येक जातिका वाचक है, जब उसका ठीक ठीक मूल अर्थ ज्ञात होगा, तब सर्पकी जातोंके लक्षण ज्ञात हो सकते हैं, सर्प विद्याका विचार करनेवाले लोग इसका अधिक संशोधन करें।

अब वेदमें आये सर्पोंके नामोंका विचार करेंगे। निम्ननाम वेदमें आगये हैं—

अघाश्व (अथर्व. १०।४।१०) अज–गार (अथर्व. ११।२।२५; २०।१२९।१७) इस शब्दसे ही पता लग जाता है कि यह (अज) बकरेको (गर–गल) निगलता अथवा भक्षण करता हैं। असित (अ–सित)–(अथर्व. ३।२७।१) यह कृष्ण सर्पका नाम है। आलिगी, विलिगी (अथ. ५।१३।७)। आशी–विष (ऐ. ब्रा. ६।१) जिसके मुखके अंदर विष रहता है। करि–क्रत; कनि–क्रत (अथ. १०।४।१३)। कल्माषग्रीव (अथर्व वेद) कुल्माष–ग्रीव। कसर्णील। (अथ. १०।४।५) कशर्णील। जूर्णी (अथ. २।२४।५)। तिरश्च–राजी। (तै. सं. ५।५।१०।२), तिरश्चि–राजी (अथर्व वेद) तिरश्चीन–राजी (मै. सं. २।१३।२१)। तैमात (अथ. ५।१३।६; ५।१८।४)। दर्वि, दर्वी (अथ. १०।१।१३)।

दशोनसी (अथ. १०।४।१७) नशोनशी=दंश करनेसे नाश करता है। नाग, महानाग (शत. ब्रा. ११।२।७।१२)। पृदाकु (अथर्व वेद) रज्जु–दत्वती। (अथ. ४।३।२; १९।४७।७,८) दांतवाला रज्जु। रथर्वी (अथ. १०।४।५)। लोहिताही (तै. सं. ५।५।१४।१; मै. सं. ३।१४ १२; वा. सं २४।३१)=लाल सर्प, अथवा जिसके काटसेने खूनका वमन होता है ऐसा सर्प। वाहस (तै. सं. ५।५।१३।१; मै. सं. ३।१४।१९; वा. सं. २४।३४)। सेरभ, सेरभक (अथ. २।२४।१)। सेवृध, सेवृधक (अथ. २।२४।१)। श्वित्र (अथ. १०।४।५; १३; तै. सं. ५।५।१०।२)। सतीन–कंकत (ऋ. १।१९१।१)। सर्प (ऋ. १०।१६।६)। स्व–ज (अ. ७।३।५८)। अहि। (ऋ. ९।१०४।७)

इतने नाम सर्पवाचक हैं। कईयोंके मतसे इनमेंसे थोडेसे नाम सर्पवाचक नहीं हैं, परंतु कई दूसरे टीकाकार ये सब नाम सर्पवाचकही समझते हैं।

अब महाभारतके आदिपर्वमें जो 'अस्तिक–पर्व' है उसके ३५ वे अध्यायमें सर्पोंके विविध जातियोंके नाम दिये हैं, वे नाम नीचे देता हूं।—(१) शेष, (२) वासुकी, (३) ऐरावत, (४) तक्षक, (५) कर्कोटक, (६) धनंजय, (७) कालीय, (८) मणिनाथ, (९) आपूरण, (१०) पिंजरक, (११) एलापत्र, (१२) वामन, (१३) नील, (१४) अनील, (१५) कल्माष, (१६) शबल, (१७) आर्यक, (१८)

कल्मापग्रीव	कल्माप
पृदाकु (आखु–पृद्)	मूषकाद्

अन्य शब्दोंमें भी सादृश्य होगा, परंतु उन सबका अर्थ ज्ञात नहीं हुआ, इस लिये कुछ लिखा नहीं जासकता। महाभारतके सर्पोंके नामोंसे कई अधिक लक्षण ज्ञात होते हैं, देखिये-(१) मणिनाथ–जिसके मस्तकमें मणि होता है, (२) वाह्यकर्ण–जिसके सिर पर दो सींगसे होते हैं, कदाचित् वे कर्णही होंगे; (३) अपराजित–जिसपर रेषायें नहीं होतीं, इसके विरुद्ध " तिरश्चि–राजी, राजिल, राजिमान् " ये सर्प हैं, अर्थात् कईयोंपर रेषायें होतीं हैं, और कईयोंपर नहीं होतीं, (४) ज्योतिक–रात्रीके समय जिसका सिर चमकता है, (५) कौणप–अशन—जो प्राणियोंके शरीर खाता है, यह महा अजगर होगा जो हिरण आदिको साबित निगलता है; (६) महासर्प—यह प्रायः बंगालके सुंदर वनका बडा सर्प होगा; (७) कर्कर—जो " कर्र " ऐसा आवाज करता है। इन सर्पोंके अर्थ विदित होगये, अन्य शब्दोंके अर्थ, सर्पोंको देखकर तथा उनके लक्षणों का पता लगाकर, ज्ञात हो सकते हैं। वेदसे लेकर आधुनिक संस्कृत ग्रंथोंमें जो जो सर्पोंके नाम आगये हैं, उन सबको इकट्ठा करनेसे (८०) अस्सीसे अधिक नागोंकी जातियां प्राचीन आर्योंको विदित थीं, ऐसा प्रतीत होता है; इस समय युरोपीयन प्राणि–शास्त्र–ज्ञोंको नागोंकी केवल २५ जातियां ज्ञात हैं। इससे ही पाठक जान सकते हैं कि इस " सर्प विद्या " के विषमय आर्योंमें कितना अधिक ज्ञान था और आधुनिक कालमें भी

कितना अधिक विचार होने की आवश्यकता है । अस्तु । अब सर्प जातियोंका विचार इतनाही लिखकर अन्य विचार करता हूं—

(४) सर्पोंकी उत्पत्ति और वृद्धि ।

सर्प " अंड–ज " प्राणी हैं, अर्थात् इनकी उत्पत्ति अंडों में से होती है । सजातीय स्त्रीपुरुष सर्पोंके शरीरसंबंधसे सजातीय सर्प उत्पन्न होते हैं, तथा इनमें व्यभिचार और स्वयंवर की प्रथा होनेसे विजातीय स्त्री सर्पिणीके साथभी इनका शरीरसंबंध होता है, और इससे वर्णसंकर होकर अनेक संकर जातियां उत्पन्न होतीं हैं ! ! ! इसी लिये महाभारतके आस्तिक पर्व अ० ३५ में कहा है कि उक्त कारणसे इनकी जातियोंकी गिनती करना अत्यंत कठिन काम है ।

नागस्त्री वर्षमें एकवार अंडे देती है, और प्रतिसमय १५ से २० तक अंडे देती है । अंडे सफेद रंगके होते हैं और कबूतरके अंडेके समान बडे होते हैं । अंडे स्वयं सूर्य की उष्णतासे परिपक्व होते हैं और बच्चे यथासमय बाहिर आते हैं ।. बाहिर आते ही भक्ष्य प्राप्त करनेके लिये इधर उधर भ्रमण करने लगते हैं । यद्यपि नाग का बच्चा बडाही सुंदर दिखाई देता है, तथापि उसको कभी हाथ नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि एक दिनकी आयुका नागका बच्चा भी काटेगा तो मनुष्य मर सकता है, इतना तीव्र विष उसमें होता है । इस लिये नागका बच्चा जहां दिखाई देगा वहां ही उसको मृत्युके हवाले करना चाहिये, तथा उसके भाई बंधु जो वहाँही

किसी स्थानपर होंगे, उनको ढूंढकर उनकोभी उसके साथ भेज देना उचित है।

नाग की आयु बडी दीर्घ होती है। ऐसा कहा जाता है कि एक हजार वर्ष नाग जीवित रहता है, परंतु इसमें सत्यका अंश कितना है यह कहा नहीं जासकता। इसकी आयु बडी दीर्घ होनेका कारण इतनाही है कि, यह अपने शरीरकी चमडी बहुधा प्रतिमास उतार सकता है, और फिर नवजवान बन सकता है। यदि मनुष्य इस प्रकार अपनी वृद्धावस्थाके प्रारंभमें अपने शरीरकी चमडी उतार सकेगा, तो मनुष्यभी अतिदीर्घ आयुतक जीवित रह सकता है। ऋषिमुनियोंने इस रीतिसे अनेक प्रयत्न किये थे, जो कि चरक सुश्रुतादि ग्रंथोंमें "आयुष्कामीय" अध्यायोंमें लिखे मौजूद हैं। परंतु उनका प्रयोग इस समय करनेवाले नहीं हैं। उनमेंसे एक प्रयोगमें लिखा है कि विशिष्ट औषधिका सेवन करनेसे शरीरके सब बाल, दांत आदि गिर जाते हैं और फिर नये आते हैं, चर्म भी नया आजाता है और मनुष्य इस प्रकार फिर युवा बन जाता है। परंतु उक्त प्रयोग करनेवाले उत्साही मनुष्य और करानेवाले सुविज्ञ वैद्य आज कल मिलना कठिन है। तात्पर्य सैंकडों वर्ष जीवन धारण करनेकी युक्ति सर्पविद्याके ज्ञानसे प्राप्त होना संभव है, परंतु इस विषयमें बहुतही आलोडन होनेकी आवश्यकता है।

सब सर्प जातिमें नाग ही अत्यंत विषयुक्त होता है तथा क्रोधी उग्र और दीर्घद्वेषी होता है, तथापि स्वयं किसी कारण के

विना किसी अन्य प्राणीपर अथवा मनुष्यपर बहुधा हमला नहीं करता । परंतु इसका स्वभाव अत्यंत क्रूर होनेके कारण अत्यंत थोडीसी खिजावटसे भी यह काटनेके लिये प्रवृत्त होता है।

कई लोक कहते हैं कि नागको एकवार दुःख देनेसे वह कभी भूलता नहीं, उस दुःख देनेवालेका शब्द स्मरण रखता है और बहुत समयके पश्चात्भी उसको पहचानकर पूर्व द्वेषसे काटता है। परंतु इस विषयका कोई अनुभव हमने नहीं देखा । हमारे मित्रोंमें कई ऐसे शूर भी हैं कि जिन्होंने सौ पचास नाग सर्पोंको यमधर्मके पास भेज दिया है, परंतु वेभी उक्त बातकी सत्यताका अनुभव नहीं कहते । कदाचित् कई जाती के नाग इस प्रकार स्मरण रखते होंगे । इसलिये उचित तो यह है कि, नागको अथवा सर्पको पहिले दुःख न देना, परंतु किसी समय उसको दुःख पहुंचा तो उसको जीवितही नहीं रखना चाहिये ।

(५) सर्पके इंद्रिय ।

महाभारतके नामोंमें "बाह्य-कर्ण" यह एक नाम है। जिसको कान बाहिर दिखाई देते हैं वह "बाह्यकर्ण सर्प" कहलाता है । इस जातिके सर्पोंसे भिन्न किसीभी सर्पके कान दिखाई नहीं देते, परंतु कानोंके विनाही वह शब्द का श्रवण करता है। संस्कृतमें "चक्षुः-श्रवाः" शब्द सर्पवाचक है, इससे पता लगता है कि, यह आंखोंसेही सुनता है। युरोपीयन प्राणि-शास्त्रज्ञोंमें इस विषयमें अबतक कोई निश्चित ज्ञान नहीं है।

नाग तथा सर्पके फेंफडे बडे लंबे होते हैं और वह अपने फेंफडोंमें पूरा श्वास ले सकता है। दीर्घश्वास अंदर लेना और उच्छ्वास पूर्णतासे बाहिर छोडना, यह प्राणायामकी क्रिया सर्प उत्तम रीतिसे कर सकता है । उसके दीर्घजीवनका यह भी एक हेतु हो सकता है। इस बातको देखनेसे मनुष्य इससे प्राणायाम की क्रिया सीख सकते हैं और पूर्ण श्वासोच्छ्वाससे दीर्घायु बन सकते हैं । पूर्ण श्वास लेकर जब यह "फूत्कार" करता है तब इसका शब्द दूरतक सुनाई देता है।

इसके शरीरके तीन विभाग होते हैं, इसका मूत्र जलरूप नहीं होता है, परंतु सखत होता है । इसका शरीर फाडनेपरभी इसके मूत्राशयका पता नहीं लगता, तथापि किसी स्थानपर मूत्राशय अवश्य होगा।

नागका मुख छोटा होनेपरभी वह तथा अन्य सर्पभी अपने आकारकी अपेक्षा बडे आकारवाले प्राणीकोभी निगल सकते हैं, क्योंकि उनका मुख सीधा और तिरछा खोला जा सकता है।

नाग प्रायः जलमें तैर सकता है, तथापि जलमें जानेको वह पसंद नहीं करता । बंगालमें कई ऐसे सर्प हैं कि जो जलके अंदरही बडी देरतक रहते हैं । परंतु इस प्रकार जलचर नाग बहुतही थोडे हैं । प्रायः नाग जलसे दूर रहना चाहता है। एक समय महाराष्ट्रमें कृष्णा नदीको महापूर आया था, उस समय बहुतही नाग जलके प्रवाहके साथ बह रहे थे । उसमें एक

आदमीभी वह गया था। परमेश्वर कृपासे वह किसी मंदिरके शिखर पर ठहर गया। जब वह अदमी वहां बैठ गया, तो उसके चारों ओर बडे सर्प इकट्ठे हुए, उसके शरीरपरभी चढे, परंतु पानीके प्रवाहसे भयभीत होनेके कारण किसीने उसको दो दिनतक काटा नहीं!! यह बात जिसके साथ बनीथी उसीने कही, इसलिये यहां लिखी है। यद्यपि सर्प जलमें काटता नहीं और प्रवाहसे घबराता है तथापि किसीभी समय उसपर विश्वास रखना उचित नहीं है।

सर्प प्रायः वृक्षोंपर चढते हैं और वहांके प्राणी खाते हैं। भक्ष्यके पीछे पडा हुआ सर्प किसीसे डरता नहीं। उस समय वह बडा दौडता है, परंतु नाग अथवा कोई सर्प कितना भी दौडनेवाला हुआ, तथापि मनुष्यके दौडनेके बराबर उसका वेग नहीं होता। इस कारण नाग चढाई करके आगया, तो आदमी दौड कर अपना बचाव कर सकता है।

नागके सब दांत गिरानेपर बहुत दिन तक वह कुछ भी खाता नहीं, और खानेपर भी वह बहुत समय जीवित नहीं रहता, इस लिये कई लोग जो स्वयं उसको मारते नहीं वे उसके सब दांत गिराकर उसको छोड देते हैं परंतु अहिंसा की दृष्टिसे कदाचित् यह ठीक नहीं होगा।

नाग सर्दीके दिनोंमें मंद होता है। इसी शीत ऋतुमें उसको पकड़ना अथवा मारना सुलभ होता है। उष्णताके तथा वृष्टिके दिनों में वह बडा ही उग्र होता है, इसलिये इन दिनों में उसको

छेडना कठिन है। इन दिनोंमें बडी सावधानता के साथ उसकी व्यवस्था करना चाहिये।

गर्मीके ऋतुमें ही सर्पोंके युग्म होते हैं, इस कारण इनको ऋतु-गामी कहा जा सकता है। स्त्रीपुरुष सर्पों को पहचानना कठिन है, परंतु प्रायः पुरुष सर्प आकार में छोटे होते हैं और उनकी दूम किंवा अग्रभाग बहुत बारीक नहीं होता।

फणा फैलाने के विना नाग कभी हमला नहीं करता। शत्रुको डर बतानेके लिये जब वह जमीनसे ऊपर उठता है, उस समय अपना आधा भाग भी खडा करता है और मुखसे फूत्कार करता है। सचमुच इस समय यह बडाही भयानक दीखता है। काटनेके समय फणा बंद करके ही काटता है क्योंकि फणा फैलाकर वह काट नहीं सकता।

(६) रहनेका स्थान और उसका भक्ष्य।

प्रायः सर्पोका निवासस्थान पुराणे मकान, गिरे हुए मंदिर, दीमक का वल्मीक, वृक्षोंके कोटर, भूमिके विवर, तथा इसी प्रकारके अन्य स्थान होते हैं। सर्प स्वयं विवर बना नहीं सकता, इसलिये दूसरोंके बनाये हुये विवर में स्वयं प्रवेश करके रहाता है और उस स्थानके पहिले स्वामीको खाता है अथवा भगा देता है, और इस प्रकार स्थानका स्वयं मालिक बन जाता है। यह इसका स्वभाव साम्राज्य बढानेवाले कुटिल राजनीतिज्ञोंके समानही बडा कुटिल होता है, इसलिये इसकी गतिकोभी " कुटिल गति "

कहते हैं। " कुटिल गति " और " कुटिल नीति " का तात्पर्य एकही है।

इसका भक्ष्य गिलहरी, चूहा, मेंडक, छोटे पक्षी, अंडे, छोटे कीमी आदि ही प्रायः होता है। यह दूधभी पीता है। बडे अजगर बडे बडे प्राणियोंको निगलता है। किसी जातिका सर्प अपना भक्ष्य चबाकर नहीं खा सकता। सर्प कभी मरा हुआ प्राणी नहीं खाता, अन्न न मिलनेकी अवस्थामें अथवा बडे सर्दीके दिनोंमें वह कई मास तक खानपानके विनाही रह सकता है, इसीलिये इसको " पवनाऽशन " अर्थात् वायुभक्षक कहते हैं। किसी प्राणीको खानेके पूर्व दंश करके उसको बधिर करता है और पश्चात् निगलने लगता है। परंतु मनुष्यको जो काटता है वह डरकें समय अपने बचावके लिये ही काटता है। वाग्भट्टमें कहा है—

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात्क्रुद्धः।
पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात्॥
दशंति सर्पास्तेपूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम्॥

वाग्भट उ. स्था. अ. ३६

(१) खाने के लिये, (२) भयसे, (३) पांवका स्पर्श होनेसे (४) विष बढ जानेसे, (५) क्रोधित होनेसे, (६) दुष्ट स्वभाव होनेसे, (७) वैरके कारण अथवा (८) देव, ऋषि, यम इन की प्रेरणासे सर्प काटता है। इनमें आगे आगेके सर्पके काटनेमें विष अधिक होता है।"

(७) नागका विष ।

नागका विष अत्यंत भयंकर होता है । एक बिंदु रुधिरमें मिल जानेसे बडेसे बडे प्राणीका मृत्यु हो सकता है । नाग की तालुमें दाई और बाई ओर तीन तीन दांत होते हैं, उनमें सबसे आगेका विष–दंत होता है। इसी लिये इस का नाम संस्कृतमें "आशी–विष" तालुमें विष धारण करनेवाला कहते हैं। देखिये संस्कृत भाषाका एक एक शब्द कितनी विद्या देता है! विष-दंत अंदरसे खोखला होता है और दांतके अग्रभागके पहिले ही छोटासा सुराख होता है, उस सुराखमें से विष बाहिर आता है । दांतके पीछे विषका कोश होता है । यदि किसी कारण यह विषदंत टूट गया, तो पीछला दांत उसका कार्य करने के लिये तैयार रहता है। दंश करनेके समय ये दोनों विषदंत आगे आकर खडे होते हैं, अन्य समयमें तालुके साथ चिपक जाते हैं ।

विषदंत के अतिरिक्त सर्पको दूसरे दांत भी होते हैं। विषसर्पको एकहि दंतपंक्ति होती है और निर्विष अथवा न्यून विषवाले सर्पको दो दंतपंक्तियां होतीं हैं। दंतपंक्तियों को देखनेसे सर्प निर्विष है अथवा सविष है इसकी परीक्षा हो सकती है ।

नाग का विष चिकणा और सफेद शहद के समान होता है, सूखने पर कीकरके गोंदके समान दीखता है, इसकी रुची बहुतही कडुवी होती है । एक सुईके अग्रभाग पर जितना लग सकता है उतना जिव्हापर लग जानेसे कई घंटोंतक मुख कडुवा रहता है। इस प्रकार उसकी रुची न देखनी ही

अच्छी है, क्यों कि यदि इस समय मुखमें अथवा गलेमें किसी स्थानपर चमडी फटी होगी तो उसके द्वारा विष रुधिरमें प्रविष्ट होकर मृत्यु प्राप्त होनेकी संभावना हो सकती है। इस लिये विषकी परीक्षा न करनी ही उचित है। नाग का विष रक्तमें मिलनेसे ही मृत्यु होगा, नीरोग और व्रणरहित चमडी पर गिरनेसे कोई खराबी नहीं हो सकती। जब यह विष रक्तमें पहुंचता है तब सब ज्ञान-तंतुओंके व्यवहार बंद करता है, उनके केंद्रस्थानोंको बधिर करता है, और अंतमें हृदयको बंद कर देता है। यह विष इतना भयंकर होता है कि बडी धमनी के रक्तमें पहुंचने पर एक मिनिटके अंदरही मृत्यु हो जाता है। यह सुखनेपर अथवा गीली अवस्थामें एक जैसाही मारक होता है। सर्पका विष दूसरे विषसर्पपर कोई परिणाम नहीं करता, परंतु निर्विष सर्पोंका नाश कर सकता है। सर्पके विषसे मरे हुए प्राणीका रक्त भी उसी प्रकार भयंकर विषमय हो जाता है। सन १८७१ में एक स्त्रीको सर्पदंश हुआ। दंशके पश्चात् उस स्त्रीका दूध उसके बच्चेने पीया, पश्चात् बच्चा दो घंटोंमें मर गया और माताका देहांत चार घंटोंमें हुआ!!

यह अनुभव देखा है कि एक के पीछे दूसरा ऐसे ९ प्राणियोंको सर्पदंश होनेपर पहिले आठ मर गये और नौवेको कुछभी नहीं हुआ। अर्थात् विषकोशमेंसे विष समाप्त होनेपर यदि नागने काट लिया तो कोई हानी नहीं होती। इतना भयानक विष परमेश्वरने क्यों बनाया है? ऐसी शंका हो सकती है, उत्तरमें निवेदन है कि इस विष में भी परमेश्वरनें अमृत रखा है। वैद्य

लोक (१) सूचिकाभरण, (२) अघोर नृसिंहरस, (३) प्रतापलंकेश्वर आदि विलक्षण गुणकारी औषधियां इसी नाग के भयंकर विषके मिश्रणसे बनाते हैं। अपस्मार (मिर्गी) की बीमारी में इस विषका प्रयोग करनेसे बडा लाभ होता है। महारोग और महाकुष्ट आदि भयंकर रोगोंमें इस विषका उपयोग करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। तात्पर्य इस विषसे धन्वंतरी वैद्य अमृत बना सकता है। इतना उपयोगी विष बनाने के लिये परमेश्वरने नागोंकी उत्पत्ति की है। विषसे दूसरे विषका नाश किया जा सकता है इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

विषेण हन्मि ते विषम् ॥

अथ. ५।१३।४

" मैं इस विषसे तेरे विषका नाश करता हूं। " बडेबडे रोग शरीरमें विष पहुंचनेसे होते हैं, इसलिये उस विष का नाश करनेके लिये उससे भी भयंकर विष चाहिये। इसलिये सर्पके द्वारा विष बनाया जाता है। कुशल वैद्य इसका उपयोग करे और लोगोंको रोगोंसे बचावे। तथा इस सर्प जातीका और भी एक उपयोग है, ये सर्प सब जगत्‌मेंसे विष को अपने अंदर खींच लेते हैं और जगत् को विषरहित करते हैं, देखिये—

सोदक्रामत्, सा सर्पानागच्छत्, तां सर्पा उपाह्वयन्त, विषवत्येहीति ॥ १३ ॥ तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥१४॥

तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्, तां विषमेवाधोक् ॥ १५ ॥ तद्विषं सर्पा उपजीवंति ॥ १६ ॥

अ. ८।१४

" वह जगती उत्क्रांत होगई और सर्पोंके पास आगई, उनको सर्पोंनें कहा कि हे विषवती यहां आओ ॥ उसका वैशालेय तक्षक वच्चा था तथा अलाबुपात्र वर्तन था ॥ धृतराष्ट्र ऐरावतने उसका दूध निकाला, वह विषही दोहा गया ॥ वह सर्पोंके पास है ।"

जगती सर्पोंके पास गई तो सर्पोंको उसमें विषही नजर आया । धृतराष्ट्र, ऐरावत, तक्षक आदि सर्पोंनें उससे विषकाही दोहन किया। अर्थात् इस जगती से ईख मीठास का दोहन कर रहे हैं, और सर्प विषको ले रहे हैं !!! जिसका जैसा स्वभाव होता है वह उस बातको ही लेता है । सर्प जगती से विषको अपने अंदर खींचते हैं और जगतीको निर्विष कर देते हैं । इसी प्रकार विच्छू आदि कर रहे हैं । इस दृष्टिसे ये सब विषयुक्त प्राणी बडा भारी उपकार ही सब सृष्टिपर कर रहे हैं । इसलिये वेद कहता है कि—

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिव्यामनु ॥

य. १३।६

" जो पृथिवी में सर्प हैं उन को नमस्कार है । " क्यों कि वे उक्त प्रकारका कार्य कर रहे हैं । यद्यपि सार्वभौमिक दृष्टिसे और तात्विक विचारसे इस प्रकार सर्पोंका महत्व और उपयोग है, तथापि वैयक्तिक दृष्टिसे इनका बडा भारी भय है, इसमें कोई संदेह नहीं । इसलिये वेदमें निम्न प्रार्थना है—

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमंतजब्धो भृमलो गुहा शये ॥ क्रमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन् मोपसृपत् यच्छिवं तेन नो मृड ॥

अथ. १२।१।४६

" हे पृथिवि ! जो सर्प और [तृष्ट-दंश्मा] सतत काटनेवाला [वृश्चिकः] विच्छु है वह (हेमंत-जब्धः) हेमंत ऋतुकी सर्दीसे सिकुडा हुआ घबराकर (गुहा शये) भूमिके विवरमें रहा है, वह तथा कोई अन्य क्रमि जो ये सब [प्रावृषि] वृष्टिके कालमें (एजति) बडी हलचल करते हैं, उसमें से कोई भी (मा न उप सृपत्) मेरे पास न आवे, जो (शिवं) शुभ होगा उससे (नः मृड) हमको सुख दो । "

सर्प सर्दीके दिनोंमें मंद होते हैं और वृष्टिके दिनोंमें प्रबल और क्रूर होते हैं, इनमेंसे कोईभी मेरेपास न आवे, यही इच्छा उक्त मंत्रद्वारा प्रकट होगई है । सब मनुष्य स्वसंरक्षण के लिये यही चाहते हैं । तत्वज्ञानी लोक सर्पोंका उपकार बेशक वर्णन करें, परंतु वेभी सर्पोको अपनेपास आने नहीं देंगे ! ! इसका हेतु स्पष्टही है । क्योंकि सबको भीति है कि—

सर्पस्त्वा हनिष्यति ॥

अथ. ११।४।४७

" सर्प हनन करेगा !" यह भीति है, इसलिये उसको कोईभी पास करना नहीं चाहता । इतनाही नहीं परंतु सर्पके समान कुटिल भी कोई न बने, इस विषयमें वेदकी स्पष्ट आज्ञा है, देखिये—

माऽहिर्भूर्मा पृदाकुः ॥

यजु. ६।१२

" (अहिः) सर्प (मा भूः) मत् बन, अजगर मत् बन ।" अर्थात् सर्पके समान कुटिल और हिंसक न बन, तथा अजगर के समान सुस्त न बन, यह वेदका उपदेश है । तात्पर्य तत्वज्ञानकी दृष्टिसे सर्पजातीका उपयोग बडा है, वैद्यकी कुशल प्रक्रियामें सर्पविष अत्यंत उपयोगी है, इतना होनेपरभी सर्वसाधारण जनता की व्यावहारिक दृष्टिसे उस सर्पके पास जानेके लिये अथवा उसे अपने पास करनेके लिये कोई तैयार नहीं, यह वास्तविकही है ।

(८) सर्पदंश.

नागके काटनेके तीन प्रकार होते हैं । उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

खातमखातमुत सक्तं....विषं ॥

अ. ५।१३।१

(१) " सक्तं "—नागके काटनेके प्रारंभमेंही, उसका विषदंत अंदर जानेके समय, मनुष्य आत्मसंरक्षण करनेके लिये उसको धक्का देकर दूर फेंकनेका यत्न करता है । इस अवस्थामें दांतोंसे

केवल चर्म खुरचा जाता है । इस प्रकारका दंश हानिकारक नहीं होता । इसका नाम " सक्तःदंशः " है ।

(२) " अ–खातं " काटनेका प्रारंभ होनेके पश्चात् एक दो निमेष चले जानेके नंतर नागको धक्का देकर दूर फेंकनेकी अवस्थामें विषदंत थोडासा अंदर पहुंचता है, परंतु विष गिरानेके लिये सर्पको जितना चाहिये उतना समय नहीं मिलता । इस प्रकारके दंशोंमेंही रक्त बाहिर आकर बहता है और विष शरीरपर अथवा जमीनपर गिरा हुआ नजर आता है । इसका नाम " अ–खातः दंशः " है ।

(३) " खातं "–काटनेका प्रारंभ होनेके पश्चात् दो तीन निमेषसे अधिक समय होनेकी अवस्थामें नाग पूर्ण रीतीसे काटता है, अपने विषदंत खूब अंदर पहुंचाता है, और विषभी पूर्णतासे अंदर गिरा देता है । दांत पूर्णतासे अंदर जानेके कारण इस अवस्थामें उसको धक्का देकर दूर करनाभी अशक्य होता है । इस दंशमें विष बाहिर दिखाई नहीं देता । इसका नाम " खातः दंशः " है । 'खात' का अर्थ पूर्णतासे खोदा हुआ है ।

पहिले दो प्रकारके सर्पदंश घातक नहीं होते, और जो बचते हैं वे इस प्रकारके दंश होनेके कारणही बचते हैं । तीसरा दंश इतना घातक होता है कि उससे बचना अत्यंत कठीनही समझना चाहिये । इसलिये सावधानताके साथ, नाग काटनेके समय जितना हो सके उतना शीघ्रही उसको धक्का देकर दूर करनेका यत्न

करना चाहिये । दयालु परमेश्वरने मनुष्यके अंदर स्वसंरक्षणक. शक्ति रखखी है, इसलिये अत्यंत डरपोक मनुष्यभी अपने स्वभावसे ही सर्पको दूर फेंकनेका यत्न उस समय करता है । हमनें सावंत-वाडीमें एक स्त्रीका उदाहरण देखा, कि जब उस स्त्रीको सर्पने काटा, उसी समय उस स्त्रीनें सर्पको पकडकर अपने मुखसे बडेही क्रोधसे उसी सर्पको काट लिया । आश्चर्य यह हुआ कि वह नाग मर गया और स्त्री बच गई । इससे यह अनुमान हो सकता है कि मरनेके समय कमजोर मनुष्यभी कितना धैर्य बता सकता है ! ! !

तीसरे प्रकारका दंश अत्यंत हानिकारक होता है । इस दंशमें [० ०] ऐसे दो छिद्र व्रणके स्थानमें होते हैं । सर्पका एक विष-दंत किसीकारण टूटा होगा, तो एकही छिद्र होगा । एक छिद्रसे गया हुआ विषभी मृत्यु लानेके लिये पर्याप्त है । सुईसे जितना छिद्र होता है उतनाही यह छिद्र होता है । नागसे भिन्न इतर सर्प जातिके दंशमें इन दो छिद्रोंके अतिरिक्त अन्य दंतोंके व्रणके चिन्ह हुआ करते हैं ।

बिच्छू, डेमु, आदिके दंशका एकही छिद्र होता है तथा इनके दंशसे दंशस्थानका दुःख अधिक होता है । सर्पदशके स्थानमें उनकी अपेक्षा दुःख कम होता है । केवल दंशके स्थान देखकर यह नागका दंश है वा नहीं, इसका पता कुशल विष-वैद्यही लगा सकते हैं । साधारण लोगोंके उपयोग केलिये निम्न लक्षण कदाचित् सहायता दे सकते हैं । (१) सर्पदंशके छिद्र कई घंटोंतक दिखाई

देते हैं, (२) सर्पदंशका स्थान नीलवर्ण कृष्णवर्णसे युक्त दीखता है। (३) सर्पदंशमें रक्तके बिंदु व्रणके द्वारपर सूखे हुए नजर आते हैं। (४) सर्पदंशके स्थानपर उसके मुखका द्रव पदार्थ लगता है और वह सूखनेपर चमकता है। (५) नागदंशके स्थानसे चार अंगुल ऊपर सखत रस्सीसे बांधकर चक्कूके नोकसे उस दंशके स्थानका खून निकालनेका यत्न करनेपर सर्पदंशमें रक्त नहीं आयेगा, और आगया तो काले रंगका आवेगा।

सर्पदंश होते ही वहांका स्थान सूझने लग जाता है, थोडे समयमें सूझ कम होती है, आधा घंटेके पश्चात् फिर सूझ आती है। पहिला सूझन वहांके विषके कारण होता है, जबतक वहां विष रहता है तबतक ही पहिला सूझन होता है।

विष अंगमें प्रविष्ट होते ही वह अशुद्ध रक्तकी रक्तनाडीसे ऊपर हृदयके पास जानेका यत्न करता है।

मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः।
देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयन् ॥

वाग्भट उ. स्था. अ. ३६

(१) सौ निमेष तक दंशके स्थानमें विष रहता है, तत्पश्चात् (२) रुधिरादि धातुओंको दोषयुक्त करता हुआ आगे बढने लगता है। यदि मुख्य बडी धमनीमें विषदंत घुस गया तो हृदयमें विष जलदी पहुंचता है और मृत्यु भी अतिशीघ्रही होता है। दो छेदों द्वारा दो विषबिंदु शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, ये परस्पर विरुद्ध दिशामें

चलकर अशुद्ध रक्तवाहक नाडीके अंदर प्रविष्ट होते हुए हृदयतक पहुंचनेका यत्न करते हैं।
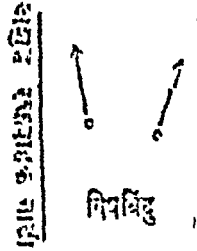
अशुद्ध रक्तवाहक नाडीकी गति हृदयकी तर्फ होती है और शुद्ध रक्तवाहक नाडीकी गति हृदयसे बाहिरकी ओर होती है। यदि ये बिंदु एक दूसरेकी ओर आ जायंगे तो कदाचित् एकही नाडीमें प्रविष्ट हो सकते हैं, इसलिये ये विरुद्ध दिशासे नाडीमें प्रविष्ट होते हैं। इतना ज्ञान इनमें कैसा होता है इसका विचार तत्वज्ञानियोंको करना चाहिये। क्या इनमेंभी आत्मा और ज्ञान होता है?

जब यह विष ऊपर चढने लग जाता है तब जिस बाल (केश) के नीचे यह विष जाता है वह नीचे लेट जाता है, जब नीचेसे विष ऊपर चढता है तब वह केश फिर खडा हो जाता है। इससे पता लग जाता है कि किस स्थानतक विषका प्रवेश हुआ है। जब सर्पदंश रात्रीके समय होता है तब उक्त बातोंको देखनेके लिये काचमणि (लेन्स) का उपयोग करना उचित है।

जहां सर्पका दंश हुआ है उसके ऊपरके भागमें रसीसे सख्त बांधना चाहिये जिससे विष ऊपर जानेमें प्रतिबंध होगा। जहां

रस्सीका बंधन होता है वहांतक विष आनेके पश्चात् बडे वेगसे वहं विषबिंदु बंधन स्थानपर आघात करता है, ये आघात आंखसेभी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर दिखाई देते हैं । यदि बंधन ढीला होगा तो थोडेसे प्रयत्नसे विष ऊपर घुस जाता है, और यदि ऊपरका मार्ग बंद हो गया तो वहांही फैलता है। इससे वह भाग पूर्णतया बधिर हो जाता है और हिलायाभी नहीं जाता।

(९) विषबाधाके लक्षण।

(१) विष शरीरमें प्रविष्ट होनेके बाद आंख लाल हो जाते हैं। तथा क्षण क्षण के पश्चात् मंद, सुस्त और निस्तेज होने लगते हैं; (२) सिरपर स्वेदके बूंद आते हैं; (३) बहुत प्यास लगती है, इस समय थोडाथोडा एकएक चमस पानी बडी सावधानीसे देना चाहिये, नहीं तो गलेमें पानी रुक कर बडीही घबराहट हो जाती है। (४) आंखकी पुतळी फैलती है; (५) सर्व अंगको पसीना आ जाता है; अंगकी उष्णता कम होकर मृत्युके समयकी ठंडक आने लगती है (६) श्वासोच्छ्वास की मुश्किल बढती है; (७) बेहोशी आने लगती है; (८) अंतमें मुखसे फेन आने लग जाता है। (९) पांचो ज्ञानेंद्रियोंके व्यापार कम होने लगते हैं, आंखकी दृष्टि कम होती है, शब्दोच्चारण अस्पष्ट होता है, रुची समझती नहीं है, मिश्री मीठी नहीं लगती और लाल मिरचीकेभी मिरचपनका पता नहीं लगता; (इसलिये सर्पदंश होनेके बाद लाल मिरची खानेको देते हैं, मिरचीका स्वाद समझनेतक खाना चाहिये,) कानने शब्द

सुनाई नहीं देता; (१०) दंशका स्थान भारी और स्पर्शज्ञान-शून्य हो जाता है; (११) त्वचाका रंग हरा तथा काला होता है; (१२) मरनेके पूर्व हिचके आते हैं । ये लक्षण हरएकको होतेही हैं, ऐसा नहीं है, परंतु इनमेंसे बहुत लक्षण होते हैं । नागसे भिन्न इतर सर्प काटनेपर सूजन होती है, जीभ बडी भारी होकर मुखके बाहिर आती है, गाल सूजकर इतने बडे होते हैं कि आंखभी दिखाई नहीं देते ।

(१०) सर्पदंश की चिकित्सा ।

निम्न मंत्र ऋग्वेदमें तथा अथर्व वेदमें आता है वह चिकित्साके विषयमें देखने योग्य है—

> यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प
> उत वा श्वापदः ॥ अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु
> सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश ॥

ऋ. १०।१६।६; अथ. १८।३।५५

" यदि तुझे काला पक्षी, कृमी, सर्प अथवा अन्य हिंस्र पशुने काटा है, तो उनके सब विषसे (अग्निः अगंद कृणोतु) अग्नि नीरोगता करे, अथवा ब्राह्मणोंके पास पहुंचा हुआ सोम आरोग्य देवे।"

सर्पविषका सबसे उत्तम तथा निश्चयात्मक उपचार इस प्रकार वेदने कहा है । तथा वाग्भट लिखते हैं—

दंशं मंडलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम् ॥
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ॥
करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम न क्षणात् ॥

वाग्भट

" मंडली सर्प पित्तकारक होता है इस लिये इसके दंशको छोडकर अन्य सर्प दंशके स्थानोंको सुवर्ण लोह आदिको तपाकर अथवा जलते कोहिलेसे जलाना चाहिये। जिसको अग्नि जलाता नहीं ऐसा कौनसा विष होगा ? " तथा—

दुर्गंधं सविषं रक्तं अग्नौ चटचटायते ॥

वाग्भट.

" दुर्गंधमय विषयुक्त रक्त अग्निमें चट्चट् ऐसा आवाज करता है।" सर्पविषसे भिन्न अन्य विषकी चिकित्साभी इस प्रकार अग्निसे हो सकती है, इसका वर्णन पूर्व मंत्रमें लिखाही है। " सोम " शब्द जिस मुख्य औषधि का वाचक है वह औषधियोंका राजा सोम आजकल मिलता ही नहीं, अन्य औषधियोंका बोध यदि इस सोम शब्दसे लेना है तो उसका विचार वैद्यही कर सकते हैं। तथा—

आरे अभूद्विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ॥
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणीयत् ॥
दंष्टारमन्वगाद्विषमहिरमृत ॥

अथ. १०।४।२६

" विष दूर हो गया, विष रोने लगा, अग्निने उस विषका निर्धारण किया, सोमने उसको बाहिर निकाला, काटनेवालेके पास विष पहुंचा और वही सर्प मर गया। "

विष दूर करनेका अग्निका धर्म तथा विष उतारनेका सोमका धर्म इस मंत्रमें कहा है। इस मंत्रका अधिक विचार वैद्योंको करना उचित है। सोम आदि औषधि जो विष दूर करतीं हैं, पहाडोंपर होतीं हैं—

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ॥
हिरण्मयीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहाऽपराजितः ॥
स वै स्वजस्य जंभन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

अ. १०।४

" भीलोंकी लडकी पहाडोंपर तेजस्वी हथियारों से औषध खोदकर लाती है। यह तरुण वैद्य आया है जो विष दूर करनेमें कुशल, स्वज नामक सर्पका तथा विच्छूका विष भी दूर करता है।"

इस मंत्रसे सूचित होता है कि सर्पविषका शमन करनेवाली कोई वनस्पतिकी जड है, जो भूमिमेंसे खोदकर प्राप्त करनी होती है। तथा इन विषोंके (अ–पराजित भिषक्) निःसंदेह चिकित्सा करनेवाले वैद्यभी होने चाहिये। समुद्रके पानीमें विष दूर करनेका धर्म है ऐसा निम्न मंत्रसे ज्ञात होता है—

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिंधवः ॥

अ. १०।४।२०

" सब सर्पोंका विष (सिंधवः) समुद्रका जल दूर करे। " " सिंधु " शब्दका अर्थ " नमकीले पानीवाला समुद्र " ऐसाभी होता है तथा ' मीठे पानीवाली नदी ' ऐसाभी होता है। यहां किस अर्थका ग्रहण करना चाहिये, अथवा यहां कोई भिन्न ही अर्थ है, इसका विचार विचारी विद्वान वैद्य कर सकते हैं। विचारार्थ "सिंधु" शब्दके अर्थ नीचे देता हूं-(१) समुद्र, (२) नदी, (३) हाथीके सोंडसे निकला हुआ पानी, (४) हाथीके गंडस्थलसे निकला हुवा मद, (५)हाथी, (६)सफेद सोहागा (Borax white)(७)नमक, (८) समुद्रका खारा पानी, (९) नील सिंधुवारवृक्ष, (१०) वमन, (११) श्वेतटंगण इन अर्थोंमेंसे कौनसा अर्थ उक्त मंत्रमें है, इसका विचार होना चाहिये। कदाचित् और भी कोई अर्थ होगा। तथा-

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ॥
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥ २१ ॥
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ॥
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वेतु ते विषम् ॥ २२ ॥

अ. १०।४

" (साधुया) साधुवृक्षके साथ मैं औषधियोंके (उर्वरीः) तंतु-ओंको लेता हूं और उनको (नयामि) ऐसा चलाता हूं कि जिससे

तेरा विष दूर हो। हे सर्प ! जो अग्नि, सूर्य, पृथिवी, ओषधि, (कान्दाविषं) मेघ आदिमें विष हैं, वह सब चला जावे।

इस मंत्रसे ज्ञात होता है कि ओषधियोंमें भी कई ओषधियां विषहारक हैं। अब इन ओषधियोंका पता लगाना चाहिये। साधु-नामकाभी एक वृक्ष है। कदाचित् यहाँ वही अपेक्षित होगा। चतुरवैद्य यत्न करेंगे तो पता लग सकता है। तथा—

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ॥
अधस्पदेन ते पदमाददेविष-दूषणम् ॥ २४ ॥
अंगादंगात्प्रच्यावय हृदयं परिवर्जय ॥
अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥
अ. १०।४

" तौदी और घृताची इन दो नामोंवाली (कन्या) ओषधि है। (विष-दूषणं) विषनाशक इनका (पदं) भाग (अधस्पदेन) नीचेसे (आददे) लेता हूं। (हृदयं परिवर्जय) हृदयको छोडकर शेष प्रत्येक अंगसे विष निकालो और विषका मार्ग नीचेकी ओर करो। इस प्रकार तेरा विष चला जायगा।"

" कन्या " शब्दका अर्थ इलायची (cardamam, large cardamam) बडी इलायची, घृतकुमारी, है। " तौदी और घृताची " इन वनस्पतियोंका पता नहीं लगता। जो विष हृदय तक नहीं पहुंचा है वह किसी अन्य अंगमें हो वहांसे निम्नगति होकर उक्त ओषधियोंसे निकाला जा सकता है। कोशोंमें "कन्या" के अर्थ—बडी इलायची, घृतकुमारी, वाराही कंद, वंध्याकर्कोटकी,

कंदगुडूची इतने हैं । " घृताची " शब्दका अर्थभी इलाइची बडी ही होगा । " तौदी " का अर्थ कदाचित् " तोदपर्णी " वनस्पति होगा । इन शब्दोंसे सूचित औषधोंसे सर्पविषचिकित्सा करके अनुभव लेना चाहिये । अस्तु । अब निम्न सूक्त देखिये—

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ॥
तत्कंकपर्वणो विषमियं वीरुदनानशत् ॥ १ ॥
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ॥
सा विहृतस्य भेषज्यथो मशकजंभनी ॥ २ ॥
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ॥
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥ ३ ॥
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यंगो मुखानि वक्रा
वृजिना कृणोषि ॥ तानि त्वं ब्रह्मणस्पत
इषिकामिव सं नमः ॥ ४ ॥
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ॥
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ॥
अथ किं पापयाऽमुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥ ६ ॥
अदंति त्वा पिपीलिका वि वृश्चयाति मयूर्यः ॥
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥ ७ ॥
य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ॥
आस्येन ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥ ८ ॥

अथ. ७।५६

"(१) यह (वीरुत्) वनस्पति तिरश्चिराजी, असित, पृदाकु, कंकपर्वा आदि सापोंके विषका नाश करती है। (२) यह औषधि मीठेपनकेसाथ उत्पन्न हुई, मधुरपन टपकानेवाली, बडी मीठी है; यह (वि-ह्रुतस्य) कुटिल-सर्प-के विषकी दवा है और मच्छरोंको दूर करनेवाली है। (३) जहां (दष्टं) काटा है और जहां (धीतं) रक्त पीया है, वहांसे (अर्भस्य) छोटे (तृप्र-दंशिनः) तीक्ष्णतासे काटनेवाले मच्छर का विष निकाल देते हैं। (४) यह जो विषके कारण (वि-परुः, वि-अंगः) तेढा मेढा बना है और मुख तेढे मेढे कर रहा है, हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानपते ! तू उसे सीधा कर। (५) नीचेसे आनेवाले (शर्कोटस्य) हिंसक सर्पादिक का विष मैनें उतार दिया है। और उस सर्पको मार दिया है। (६) तेरे बाहुमें बल नहीं है, तेरे सिर में और बीचमें भी नहीं है, हे विच्छू ! फिर इस पापी पुछ में ही थोडासा विष तू क्यों धारण करता है? (७) हे सर्प ! तुझे चूंटियां खातीं हैं, (मयूर्यः) मोरानियें तुझे काटतीं हैं, परंतु तेरा (शार्कोटं) हिंसक विष सबही जानते हैं। (८) हे बिच्छु ! तू पुच्छसे और (आस्येन) मुखसे (प्रहरासि) प्रहार करता है। तेरे मुखमें विष कहां है? तेरे (पुच्छ-धौ) पुच्छकी थैलीमेंही विष है।"

यह सूक्त अन्योक्ति अलंकारका उत्तम उदाहरण है। परंतु इस विषयका विवरण करनेके लिये यहां स्थान नहीं है। जो पाठक अन्यो-क्ति अलंकारका हृद्गत जानते हैं उनको छठां और सातवां मंत्र

देखनेसे पता लग जायगा कि, इनमें सर्प और बिच्छूके विषसे दुष्ट मनुष्योंका वर्णन कितनी उत्तमतासे किया है। सबही सूक्त अन्योक्ति अलंकारका है। परंतु यहां अवकाश न होनेके कारण उसका स्वरूप न बताते हुए, सर्प-विद्याके विषयका आशयही यहां बताया जाता है।

तिरश्चिराजी, असित, पृदाकु, कंकपर्वा, शर्कोट, आदि नाम सर्पजातियोंके हैं। मधुवल्लीसे इनका विष दूर होता है। " मधु " शब्द मधुक वृक्ष, अशोक वृक्ष, यष्टि मधु, जीवंति वृक्षका पर्याय है। कदाचित् और कोई औषधि भी इससे ज्ञात हो सकती है। उक्त सूक्तके पहिले तीन मंत्रोंमें कहा है कि इस औषधिसे विष दूर होता है, चतुर्थ मंत्रमें बताया है कि विषबाधाका परिणाम अंग प्रत्यंगोंपर कैसा होता है। मंत्र छः सात और आठमें विशेषतः अन्योक्ति अलंकारका काव्यमय वर्णन है। इस मधुवृक्षके द्वारा चिकित्साका प्रयोग उत्तम वैद्य जान सकते हैं। अब यहाँ और एक सूक्त देखिये—

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवःकविर्वचोभिरुग्रैर्नि
रिणामि ते विषम् ॥ खातमखातमुत सक्त
मग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥ १ ॥
यत्ते अपोदकं विषं तत्त एतास्वग्रभम् ॥
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा
नेशदादु ते ॥ २ ॥ अ.५।१३

दिव्य कवि वरुणने मुझे (ददिः) दिया है, उस उग्र वचनसे तेरा विष (निरिणामि) निकाल देता हूं। (खातं) अंदर तक गया हुआ, (अ-खातं) ऊपर ही रहा हुआ (सक्तं) केवल लगा हुआ विष (अग्रभं) मैंने पकड लिया है, (इरा इव) जल जैसा (धन्वन्) मरुदेशमें नष्ट होता है, वैसा विषको नष्ट कर देता हूँ॥ जो तेरा (अप-उदकं) रूखा विष इनमें पकडा है, तथा जो मध्यम, उत्तम और निचले भागको (गृह्णामि) लेता हूं उसमें होगा, वह भयसे ही (नेशत् आत् उ) नष्ट हो जावे।"

पहिले मंत्रमें " खात, अखात, सक्त " ये काटनेके तीन प्रकार कहे हैं, इनका वर्णन पूर्व स्थलमें किया ही है। इनमेंसे गया हुआ विष पकडकर रखना है। पकडने की रीति " अवम मध्यम उत्तम" अंगोंको अच्छी प्रकार काबू करनेसे सिद्ध होती है। जहां सर्पका दंश हुआ होगा उसके ऊपर तीन स्थानोंमें रस्सीसे अच्छी प्रकार बांधना चाहिये, जिससे विष ऊपर जायगा नहीं और उन बंधोंमें पकडा जायगा। यह ही " विषं अग्रभं " का तात्पर्य है। तथा—

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते॥ अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः॥ ३॥ चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्॥ अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम्॥ ४॥

अ. ५।१३.

" मेरा (रवः) शब्द मेघके समान वीर्यशाली है। उग्र वचनसे तेरे विषमें (बाधे) बाधा डालता हूं। मैंने (अस्य) इसके उस रसको (अग्रभं) लिया है। जिस प्रकार अंधकारसे सूर्य उदय होता है उस प्रकार मनुष्योंके साथ वह उठे॥ हे सर्प ! आंखसे तेरी आंख नष्ट करता हूं, विषसे तेरा विष दूर करता हूं। हे सर्प ! तू मर जा, जीवो मत्। विष तेरे पासही (प्रत्यग् अभ्येतु) फिर आजाय। "

मंत्र तीनमें शब्दके वीर्यसे विष दूर करनेकी विद्याकी सूचना हुई है। इसका विशेष वर्णन मानसचिकित्साके प्रसंगमें करूंगा। चतुर्थ मंत्रमें विषसे विषचिकित्सा कही है। तथा—

कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ॥ या मे सख्युस्तामानमपिष्ठाताश्रा वयंतो नि विषे रमध्वम् ॥५॥ असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ॥ सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुंचामि रथाँ इव ॥ ६ ॥

अ. ५।१३

" हे कैरात, पृश्न, (उप-तृण्य) घासके पास रहने वाले, भूरे रंगवाले, (असिताः) कृष्ण सर्पो, (अलीकाः) क्षुद्र सर्पो ! आप (मे सख्यः) मेरे मित्रके (स्तामानं) घरके पास (मा स्थात) न ठहरो। यह मेरा वचन (आश्रावयंतः) सुनते हुए तुम सब अपने विषमेंही रमते रहो॥ (असित) कृष्ण सर्प,

तैमात, (बभ्रोः) भूरे रंगवाले और (अपोदकस्य) जलके बाहिर रहने वाले तथा (सात्रासाहस्य) युग्म सर्प के विषको मैं वैसा ढीला करता हूं कि जैसा वीर धनुष्यकी डोरीको ढीला करते हैं। इन मंत्रोंमें कैरात, पृश्न, उपतृण्य, बभ्रु, असित, अलीक, तैमात, अपोदक, सात्रासाह ये नाम सर्पजातीके हैं। इनके लक्षणोंका पूरा पूरा पता लगाना चाहिये।

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ॥
विद्म वः सर्वतो बंध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥
उरुगुलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ॥
प्रतंकं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ॥
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसं विषम् ॥ ९ ॥

अ. ५।१३

आलिगी, विलिगी इन सांपिनी के पिता, माता, बंधुको सब प्रकार से (विद्म) हम जानते हैं, हे सर्पों! तुम (अ-रसाः] रस हीन होनेपर क्या करोगे? उरुगुला सांपिनीकी (दुहिता) बच्ची (दासी) दंश करने वाली (अ-सिक्न्याः) कृष्ण सर्पिणीसे उत्पन्न हुई। इन सब (दद्रुषीणां) दद्री करनेवालीयोंके (प्रतंकं) घातक विषको मैं (अरसं) निःसार अर्थात् निर्बल करता हूं॥ पहाडपर (अवचरंतिका) भ्रमण करनेवाली बोली कि (कर्णा) कानवाली, (श्वावित्) साही, तथा (खनित्रिमाः) भूमिमें रहनेवाली जो सांपिनियां हैं उन सबका विष रसहीन है।

इन मंत्रोंमें जो सर्पोंके नाम हैं, उनके लक्षणोंका पता लगाना बडा कठिन है, तथापि पाठक विचार करेंगे तो बहुत कुछ पता लगनेका संभव भी उत्पन्न होसकता है। तथा—

तावुवं न तावुवं न घेत् त्वमसि तावुवम् ॥
तावुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥ तस्तुवं न तस्तुवं
न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ॥ तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११ ॥
अ ५।१३

" तावुव और तस्तुव ये पदार्थ विषनाशक हैं। " उक्त पदार्थोंका पता लग जानेपर इन मंत्रोंका ज्ञान हो सकता है। तबतक ये मंत्र अज्ञात ही रहेंगे।

इस सूक्त में कई शब्द सांपोंके नामोंके तथा विषहारक पदार्थोंके वाचक हैं परंतु वे समझमें नहीं आते। बड़ा प्रयत्न करनेपर भी समझमें नहीं आये। जिन पाठकोंको इन शब्दोंसे बोधित वास्तविक पदार्थ ज्ञात हों, कृपया वे प्रकाशित करें, ताकि उससे सर्पोंसे त्रस्त हुए लोक सुखी हों। जिस दिन इस सूक्तका पूर्ण रीतिसे पता लग जायगा, उसी दिन सर्पका विष हरण करनेकी पूर्ण विद्या प्रकट होगी। सब कोश उपस्थित होने परभी ये शब्द अज्ञात ही रहते हैं, इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि वेदकी विद्या कितनी लुप्त हो गई है, और उसका पुनरुद्धार करनेके लिये हम सबको कितना अगाध परिश्रम करना आवश्यक है। अब पूर्व लिखित सूक्तोंपर थोडासा विचार किया जाता है—

(१) अग्नि द्वारा विषस्थानको जलानेकी सूचना अथर्व १०।४।२६ मंत्रसे मिलती है। " अग्निः अहेः विषं निरधात्। " यह मंत्रका कथन अत्यंत सत्य है सर्पविषके ऊपर यह उपाय निश्चित ही है। वाग्भटके कथनानुसार मंडली सर्पके लिये यह अग्निचिकित्सा नहीं करनी चाहिये। कुछ साधन न मिला तो जलता हुआ कोयला लेकर तत्काल जखम जलाना अथवा जहां विष पहुंचा होगा वहांका भाग जलाना चाहिये।

(२) उसी मंत्रमें सोमवल्लीका विषनाशक गुण लिखा है। परंतु सोमवल्ली आजकल उपलब्ध नहीं है। हिमालयके मुंजवान् पर्वतपर मिल सकती है ऐसा पता लगा है, परंतु कोई कुशल वैद्य वहां जाये और सर्व लक्षण देखकर पता लगाये तब हो सकता है। तब तक असली सोमवल्ली प्राप्त नहीं हो सकती। असली सोमवल्ली जिसका कि सोमरस ऋषि लोक पिया करते थे, वह शतपथ ब्राह्मणके समय ही दुष्प्राप्य होगई थी। शतपथ (४।५।१०।१-७) में लिखा है कि सोम न मिलनेकी अवस्थामें अरुण पुष्प, श्येनहृत, आदार आदि वनस्पतियोंका रस लेकर सोमयाग करना। तात्पर्य सोमकी दुर्लभता शतपथके कालसे अर्थात् महाभारतके पूर्व कालसे है। इस समय तो असली सोमका पतातक नहीं है। पूर्वोक्त मुंजवान् पर्वतपर अथवा हिमालयकी किसी अन्य पहाडीपर प्रयत्न शील पुरुष ढूंढनेका यत्न करेंगे तो वहां सोमवल्ली प्राप्त होना संभव है।

(३) अथ. (१०।४।२६) में " अहेः विषं दंष्ट्रारमन्वगात् अहिः अमृत ।" कहा है । सांपने जिसको काटा है वह मनुष्य यदि उसी सांपको काटेगा तो वह विष उस सांपमें प्रविष्ट होता है, वह सांप मरता है और वह मनुष्य बचजाता है, इस विषयमें अनुभवकी बात पूर्वस्थलमें लिखी ही है । वाग्भट में भी कहा है कि " दृष्टमात्रो दशेदाशु " (वा. सर्प वि- चि-) काटते ही उसी सर्पको काटनेसे विष उतर जाता है । वेदनेभी वही बात उक्त शब्दमें कही है । आत्मसंरक्षणके लिये इस अवस्थामें सांपको अपने मुखसे काटना वेदके अनुकूल ही प्रतीत होता है । अन्य चिकित्साओंके समान यह भी एक चिकित्साही है । वेद कहता है इस प्रकार सापको काटनेसे " अहिः अमृत " सांप मर जाता है क्यों कि " दंष्ट्रारं अन्वगात् विषं " उसी काटने वाले सापके पासही वह विष चला गया है । परंतु यह घोर कर्म कैसा किया जा सकता है? यही एक बडाभारी प्रश्न है ।

(४) अथ. (१०।४।१४) में कहा है कि " पहाडोंपर किरातोंकी कुमारिकायें भी औषधियां खोदकर प्राप्त करतीं है ।" यह मंत्र पूर्व स्थानमें दिया ही है । इस मंत्रसे वेदने सूचित किया है कि जंगलमें रहनेवाले लोकोंसे औषधियोंका पता लग सकता है । इस लिये वैद्योंको उचित है कि वे पहाडोंपर और वनोंमें भ्रमण करके जंगली लोकोंसे औषधियोंका पता लगावें, ग्रंथोंमें बहुत कुछ लिखा होता है परंतु उसका साक्षात् अनुभव लेनेके विना कार्य नहीं

होता। जंगली लोकोंसे अनुभूत औषधियां प्राप्त हो सकतीं है। ज्ञान प्राप्त करनेका यह एक राजमार्ग है। इसके आगेके १९ वे मंत्रमें शिक्षित विषवैद्यका वर्णन है।

(५) अथर्व (१०।४।२१) में "अर्वती" और उसी सूक्तके मंत्र ५ में " पैद्व " शब्द क्रमशः घोडी और घोडेके वाचक हैं। घोडा घोडी अथवा इन शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले कोई अन्य पदार्थ विषहारक हैं। घोडाघोडीके विषहारक गुणके विषयमें वैद्योंको अन्वेषण करना चाहिये अथवा इन शब्दोंके अन्य अर्थोंकी, शक्य हो तो, खोज करनी चाहिये।

(६) "तौदी, घृताची, कन्या।" ये औषधियोंके नाम हैं (अ. १०।४।२४) ये शब्द कोशोंमें बडी इलायचीके वाचक हैं। कोई अन्य अर्थ भी संभवनीय होगा। बडी इलाईची किस प्रकार सांपोंका तथा अन्य प्रकारका विष शमन करती है, इसके प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करना चाहिये।

(७) अथ. १०।४।२५ में प्रत्येक अंगसे विष नीचेकी गतिसे उतारनेका विधान है। क्या यह पसीनेके द्वारा विष दूर करनेकी चिकित्सा है या किसी अन्य रीतिसे, इसका विचार करना उचित है। इस मंत्रमें " हृदयं परिवर्जय " यह सूचना अत्यंत महत्वपूर्ण है। हृदयको छोडकर अन्य अवयवोंसे विष दूर करनेका उपाय इसमें है। हृदयमें सर्पविष पहुंचने पर मृत्यु निश्चित ही है, फिर उपाय होही नहीं सकता।

यहां हमारे देखनेमें जो बात आगई है, विचारार्थ लिखना उचित है। कई विषवैद्य हमने ऐसे देखे हैं कि जो सर्पआदि विषजंतुके काटनेपर उस दंश स्थानपर विवक्षित वनस्पतिके पल्लवोंसे उतारा करते हैं। " उतारा " करनेका तात्पर्य यह है कि ऊपरसे नीचेकी दिशासे उक्तपल्लवोंको हिलाते हैं। समझ लीजिये कि पिंडरीमें सर्पदंश हुआ है, तो पल्लवोंको सीधे हाथमें पकडकर जंघासे पांवकी अंगुलि-तक लेजाते हैं, इस प्रकार वारंवार करते हैं। इस प्रकार " उतारा " करनेसे विष दूर होता है ऐसा लोकोंका अनुभव है। निर्गुडी, निंब आदिके ही पल्लव इस कार्यके लिये वर्ते जाते हैं। अ. १०।४।२६ मंत्रके कथनका तात्पर्य इस प्रकारका उतारा करनेका है ऐसा पता-लगता है, क्यों कि हृदयको छोडकर अन्य अवयवों और अंगोंसे विष नीचेके मार्गसे उतारनेका वर्णन उक्त मंत्रमें स्पष्ट है। इसका विचार विषचिकित्सक करें।

(८) अ. ७।५६।२ में " मधु " वनस्पति विषनाशक है ऐसा कहा है। इस वनस्पतिका निश्चय होना चाहिये। इसका और गुण मशक-जंभनी (मच्छरोंका नाश करने वाली) कहा है। यदि मधु वनस्पतिसे मच्छर नष्ट होते हैं तो मलेरिया ज्वरके पीडित प्रांत इस भरतखंडमें अनेक हैं, वहां मधुर वनस्पति लगानेसे मच्छर नष्ट होंगे और लोक सुखी हो सकते हैं। इस लिये मधु वनस्पतिका निश्चय होना चाहिये और उसका उपयोग विष निवृत्तिके लिये किस प्रकार करना चाहिये और मच्छरोंको दूर करनेके लिये किस रीतिसे करना चाहिये, इसका स्पष्टीकरण होना चाहिये।

(९) अथ. ५।१३।१ में कहा है कि " वचोभिः उग्रैः निरि-णामि ते विषं " (उग्र वचनोंसे तेरा विष दूर करता हूं) यह मंत्र विषनिवारक उपायोंके विचार करनेके समय अवश्य ध्यानमें धरने योग्य है । केवल " शब्दोंद्वारा विषकी निवृत्ति " होना संभव है अर्थात् " मंत्र-सामर्थ्य " से विष निवृत्त हो सकता है, ऐसा यहां पता लग सकता है । इस विषयमें मंत्र के शब्द अत्यंत स्पष्ट हैं । इन शब्दोंका दूसरा कोई अर्थ होही नहीं सकता " मानस चिकित्सा " में तथा " आथर्वणी और आंगिरसी चिकित्सा" में यह बात स्पष्ट होगी । परंतु यहां संक्षेप से लिखनी आवश्यक है । वीर्ययुक्त शब्दोंके उच्चारणसे विष अथवा रोग दूर हो सकते हैं यह बात अथर्ववेदमें कित्येक स्थान पर स्पष्ट दिखाई देती है । " वैदिक-चिकित्सा-पद्धति " नामक पुस्तकमें तथा "वैदिक-प्राण-विद्या" नामक पुस्तकमें अल्प अंशसे बताया है कि "इच्छा शक्तीकी प्रबल प्रेरणासे प्रेरित हुए शब्द " विलक्षण कार्य करते हैं । शब्दका नाम ही 'महो देव' (य. १७।९१) है । जब यह महान् देव शब्द आत्माकी प्रबल इच्छा शक्तीको साथ लेकर प्रकट होता है तब यह कृतकारी होता है । आजकल बहुतसे लोक मंत्रशक्तीको मानते नहीं, यह किसी प्रकार आश्चर्यकी बात नहीं है, क्यों कि, मुनि बननेके विना वाचाकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, और आजकल " मुनि " बननेकी अपेक्षा " वाचाल वक्ता " बननेकी ओर प्रवृत्ति अधिक है ! ! ! इस लिये अपनी वाणीकी शक्ति कोई जानता नहीं ।

मंत्रप्रयोगके विषयमें हमने देखा एक उदाहरण यहां लिखता हूं। पूनामें म. गोविंदराव नामक एक मेरे मित्र हैं। पांच वर्ष पूर्व उनकी धर्मपत्नीको सर्पदंश होगया। सायंकालका समय था; सर्प काटनेके पश्चात् उक्त स्त्री की बडी घबराहट होने लगी। पूनाके प्रसिद्ध डॉक्टर लाये गये, उन सबने डॉक्टरी इलाज किये और करीब रातके नौ बजे सबने कहा कि अब अवस्था यहांतक पहुंची है कि इसके पश्चात् इलाज नही हो सकता। मुखसे फेन निकल रहाथा, पसीना आ रहाथा, आंखें भयानक बन गईथीं, शरीर ठंडा बनने लगाथा और डॉक्टरोंने निराशा प्रकट की थी। इतना होनेके पश्चात् किसी मित्रकी प्रेरणासे पूना छावनीसे एक पूर्वीया आदमी लाया गया। उसने वह अवस्था देखकर कहा कि इलाज हो सकता है। पश्चात् उसने उस स्त्रीको बिठलाया और पीठ पर एक पीतलकी थाली लगाई, आश्चर्य यह कि लगाते ही पीठको थाली चिपक गई, नंतर वह दूर खडा रहा और मंत्र बोलकर उस थालीपर चावल फेंकने लगा। कुछ आधा घंटेके पश्चात् थाली नीचे गिर पडी, तब उसने कहा कि विष उतर गया है। अब उसको सूर्योदय होने तक जागृत रखना चाहिये। इतना कह कर वह चला गया। मंत्रप्रयोग करनेके लिये उसने कुछभी लिया नहीं। पैसा आदि न लेनेका हेतु उसने यह कहा कि वैसा करनेसे मंत्रका बल कम होता है। तत्पश्चात् वह स्त्री अच्छी हो गई, और दूसरे दिन जब डाक्टरोंने देखा तब सबही आश्चर्य चकित हो गये !!!

यह बात जैसी होगई वैसी सारांशरूपसे लिखी है। म. गोविंद राव पूनामेंही हैं, जो उनको मिलकर इस विषयमें अधिक जानना चाहते हैं वे वैसा इस समयमें भी कर सकते हैं। इस प्रकारके मंत्राचिकित्सक कोल्हापुरमें तथा साताराके पास माहुलीमें थे परंतु अब कोई नहीं हैं। मेरे देखनेमें अन्य कोई उदाहरण नहीं आया है। तथापि पूर्व मंत्रके शब्दोंसे पता लग सकता है कि मंत्रविद्यासे इस प्रकारकी चिकित्सा हो सकती है। पाठक इसका अधिक संशोधन करें।

(१०) अथ. ५।१३।५ में कहा है कि " हे सर्पो। मेरे मित्रके घरमें न रहिये " (मा मे सख्युः स्थामानं स्थात)। पाठक पूछेंगे कि क्या यह बात सर्प सुन सकते हैं और उसकी आज्ञाका पालन कर सकते हैं? यह भी मंत्रविद्याका ही चमत्कार है। यह मैंने स्वयं देखा है कि बिच्छू अथवा सर्प निश्चित रेषाओंके मर्यादाओंके अंदरही विना किसी अन्य आवरणके रखा जा सकता है। खुले मैदानमें एक रेखासे गोल आकृति बनाकर उसमें सर्प रखा गया था, तथा दूसरे स्थानपर बिच्छू रखाथा। कई घंटोंतक वे वहांही पडे रहे जबतक वही आदमी फिर आकर उनको निकाला नहीं। यह बात निःसंदेह आश्चर्यकी है, परंतु असत्य नहीं है। तथा इसको झूटभी नहीं कहा जा सकता। अ-५।१३ सूक्तके वाक्य यदि पाठक इस दृष्टिसे देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि वे वाक्य इस प्रकारकी शक्तिके ही सूचक हैं। यद्यपि इसविषयमें निश्चित ज्ञान मुझे स्वयं नहीं है, तथापि मेरे अज्ञानके कारण वेदमं-

त्रोंका अर्थ उलटा करके मंत्रशक्तिके अभावकी स्थापना करनाभी मैं बुरा समझता हूं। हमको मंत्रोंकी विद्या जाननी चाहिये, न कि हमारे अज्ञान के अनुकूल मंत्रोंके अर्थ घडने हैं। मंत्रोंके शब्दोंसे जो बात स्पष्ट होती है वह उक्त प्रकार है, इसका अधिक विचार करनेके पश्चात् निश्चय हो सकता है कि सत्य क्या है।

इस प्रकार विषचिकित्साके विषयमें वेदका कथन है उक्त मंत्रोंके हरएक शब्दका बहुतही विचार होना आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं। इसी लिये ज्ञात और अज्ञात मंत्र इस लेख द्वारा पाठकोंके सन्मुख रखे हैं। मंत्र सन्मुख होनेसे कभी न कभी विचार हो जायगा।

(११) उपाय योजना।

(१) सर्पदंश होनेकी संभावना होतेही बडी सावधानी रखनी चाहिए। काटनेके समयही उसको दूर फेंकनेका यत्न करना चाहिये जिससे वह दंशस्थानमें विष गिरा नहीं सकेगा। दंशस्थानसे विशेष रक्त बहने लगा तो कोई हानी नहीं है। तथा उस समय मनसे सांपको निम्न प्रकार कहना कि—

अदंति त्वा पिपीलिका विवृश्चंति मयूर्यः॥

अथ. ७।५६।७

"अरे सर्प! तुझे चूंटियां खातीं हैं और मोरणियां कुचलतीं हैं" तेरे जैसे तुच्छ प्राणीसे मैं नहीं डरूंगा। ऐसा मन दृढ करके सर्पको दूर फेंक देना और किसी प्रकार भी डरना नहीं।

(२) सर्पदंश होनेके पश्चात् मुखसे दंशस्थानका रक्त शोषण करनेका यत्न करना चाहिये। परंतु यदि दांत अथवा होंट आदिमें व्रण हो तो कदापि रक्त चूसनेका काम करना उचित नहीं है, क्यों कि मुखके व्रणसेभी विष शरीरके अंदर जा सकता है। रक्त कडुवा लगा तो समझना कि उसमें विष है। नागका बच्चा काटेगा तो प्रायः रक्त बाहिर नहीं आवेगा। वाग्भट कहते हैं मिट्टी, गोमय, स्वाह आदि मुखमें धरके दंशके स्थानपर मुखसे रक्त चूसना चाहिये। स्वयं चूसना अशक्य हुआ तो दूसरेके द्वारा चूसा जा सकता है, अथवा अन्य प्रकार रक्त निकाला जा सकता है। तात्पर्य यह है कि दंशके स्थानका रक्त ठीक प्रकार बाहिर जाना चाहिये और एकभी विषबिंदु अंदर नहीं रहना चाहिये।

(३) सर्पदंश होतेही हाथसे सांपको पकडकर उसीको मुखसे काटनेसे विषबाधा नहीं होती। इस प्रकार काटनेके पश्चात् तत्काल दांतोंसे मिट्टी चबाकर उस थूंकका लेप अथवा कानके मलका लेप उस दंशपर करना चाहिये।

(४) अथर्व ५।१३।२ में कहा है कि " विषं तत्त एतास्व-ग्रभं ॥ गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं....॥ " अर्थात् " सर्पका विष उत्तम मध्यम और अवम इनमें लेता हूं। " इसका तात्पर्य यह है कि सर्पदंशके व्रणसे तीन चार अंगुल ऊपर रस्सीसे एक बंधन बांधना चाहिये यह अवम-बंधन है, इसके और ऊपर छः छः अंगुल अंतरपर और दो बंधन रसीसे करने चाहिये। येही

उत्तम मध्यम और कनिष्ठ बंधन हैं । रस्सी हातके अंगुलके बराबर मोटी होनी चाहिये, बारीक रसीसे चमडी कट जायगी । बंधन इस प्रकार सखत बांधना चाहिये कि निचला खून ऊपर न जाने पावे । यदि हाथसे बंध ठीक न बांधा जाये तो रसीमें लकडी डालकर खूप कसना चाहिये और रोगीकी चिल्लाहटकी ओर देखना नहीं चाहिये, क्यों कि बंधन ढीला होनेपर विष हृदयमें जलदी पहुंचेगा और शीघ्रही मृत्यु होगा । बंधन बांधनेपर उसपर पानी डालनेसे और भी कसा जा सकता है ।

(५) जहां विष पहुंचा होगा वहां तीक्ष्णशस्त्रसे खुरचकर बहुतसा विषमय रक्त निकाल देना चाहिये । खुरचे हुए स्थानपर नमक अथवा बारूदकी दारू लगानेसे रक्त अच्छीप्रकार बहता है । विषमय रक्त काला होता है और शुद्ध रक्त लाल होता है । किसी समय विष कहां होता है इसका पता नहीं लगता, उस अवस्थामें बहुत गर्म जल निचले बंधनके नीचे लगाकर हाथसे मालिस करनेसे जहां विष होगा वहां सूजन चढी प्रतीत होगी, वहांही शस्त्रसे खुरचनेसे विष बाहिर आने लगेगा ।

(६) उक्त प्रकार शस्त्रके व्रणसे लाल खून निकलने लगेगा तो यह निश्चय नहीं करना कि संपूर्ण विष बाहिर आगया है, कदाचित् अंदर भी रहता है । इसको पूर्णतासे बाहिर निकालनेके लिये रोगीको शांत रीतिसे आरामपूर्वक बिठलाकर दंशस्थानके चारों ओर शुष्क सेकसे सेकना चाहिये । नमक अथवा रेतके द्वारा अथवा

गर्म पानीसे सेकनेसे विषका वेग कम होता है। पांचदस मिनिट सेकनेके पश्चात् फिर पूर्ववत् रक्त निकालना। इस प्रकार चार पांचवार करनेके पश्चात् यदि विष न आया तो समझना चाहिये कि विष नही है। पूर्ण निश्चय होनेके पश्चात् सब बंधन छोडनेमें कोई दोष नहीं है।

(७) यदि भयंकर विषवाले सर्पका दंश हो अथवा बहोत विष अंदर गिरा हो, तो बंधनोंकी पर्वाह न करता हुआ वेगसे विष ऊपर चडता है; ऐसी अवस्थामें सबसे ऊपरले बंधन के स्थानमें हड्डीतक सब मांस, चर्म आदि सबको लोहेकी लाल छुरियोंसे जलाकर काटना चाहिये। यह आसुरी प्रयोग है, परंतु वेदने बतायाही है कि " अग्नि विषका हरण करता है " इस अवस्थामें इस आसुरी उपायसे ही बचना संभव है अन्यथा नहीं; यह अग्निप्रयोग कुशल वैद्य करेगा तो अच्छा है, परंतु कुशल वैद्यके अभावमें साधारण धैर्यशाली पुरुषभी हड्डीतक सब मांसको जलाकर रोगीको बचा सकता है। यदि कुशल डाक्टर इसका विचार करेंगे तो बहुत लाभ हो सकता है, परंतु सर्पविषकी बाधा युरोपमें कम होने से सर्पविद्याका वहां अभाव ही है। यहांके बडे नगरोंमें बडे चतुर डाक्टर और वैद्य रहते हैं, परंतु बडे नगरोंमें भयानक सर्प कम होते हैं। जहां विषसर्पोंसे लोक मरते हैं; वहां न तो कुशल डाक्टर होते हैं और न चतुर वैद्य होते हैं ॥ तथा कई विषसर्प इतने जहरिले होते हैं कि दंश होनेके पश्चात दस पंद्रह

मिनिटोंके अंदर ही प्राण चले जाता है, इसलिये बडे डाक्टरोंको बुलाने के लिये समयही नहीं होता। यही कारण है कि सर्पविद्याका साधारण ज्ञान इस देशके निवासीके लिये अत्यंत आवश्यक है। यही कारण होगा कि प्राचीन कालकी पाठविधिमें सर्पविद्या अवश्यमेव सिखाई जाती थी।

(८) पीठ, गर्दन, बगल आदि ऐसे स्थान हैं कि जहां सर्प का दंश होनेपर बंधन का उपयोग करना असंभव है, वहां अग्निसे जलानेका उपाय उत्तम है अथवा शस्त्रसे विषमय रक्त निकालना भी अच्छा है। परंतु यह सब त्वरासेही करना चाहिये।

(९) हाथ अगर पांवकी अंगुलीको सर्पदंश हुआ हो तो शस्त्र-पास होनेपर तत्काल उस अंगुलीको काट कर फेंकना, सबसे उत्तम उपाय है। परंतु यह तत्काल करना चाहिये।

(१२) औषध उपचार।

वेद में जो औषधिप्रयोग दिये हैं उनका विचार पीछे कियाही है। इसके अतिरिक्त उपचारोंका विचार यहां करना है—

(१) इमलीका कल्क पानीमें निकालकर उसमें राईका तेल और नीला थोथा मिलाकर पिलाते हैं।

(२) कोंकणमें बहुत दुर्गंधयुक्त मच्छलीयोंको पानीमें घोल-कर पिलाते हैं।

(३) नागफणी वनस्पतिकी मूली पानीमें घोलकर पिलाते हैं।

(४) नागदमनी की जडें पानीमें घोलकर पिलाते हैं, मुखमें खुजली होने लगी तो पीछेसे घी पिलाते हैं।

(५) श्वेत द्विदल कणेरीकी जड (३ से ६ माशे तक) पानीमें घोलकर पिलाते हैं।

(६) केलेके वृक्षके आंतरिक गर्भ का पानी एक दो कौल पिलाते हैं।

(७) आगके पत्ते एक दो लेकर उसको पीसकर उसकी गोली खानेसे विष उतर जाता है।

ये सब उपचार नागके विषका निश्चय होनेपर ही करने योग्य हैं। केलेके वृक्षके आंतरिक गर्भके रसको छोडकर अन्य उपाय अत्यंत घातक हैं। सर्पविष न होनेकी अवस्थामें ये औषध ही मनुष्यका प्राण ले सकते हैं। इसलिये नागविषका निश्चय करके ही ये औषध देना उचित है। इसके अतिरिक्त—

(१) लाल मिर्ची खानेको देते हैं। विष रहने तक मिर्चीका स्वाद मालूम नहीं होता है। मिर्चीका स्वाद प्रतीत होने लगेगा तो समझना कि विष उतर गया है, तत्पश्चात् घी पिलाना आवश्यक है।

(२) सर्पदंशके स्थानपर मुर्गीका पश्चिमद्वार चिपकाते हैं, विष होने तक मुर्गी मरती जाती है, विष समाप्त होनेके पश्चात् मुर्गी मरती नहीं। इसप्रकार सात आठ मुर्गियां मर जातीं हैं और आदमी अच्छा हो जाता है।

(३) सावंतवाडी संस्थानमें वेतोरें ग्राम है। वहां एक देवीकी मूर्ति है और उसी मंदिरके पास एक कुवा है। उसी कूवेका जल उसी मूर्तिपर चढाकर सेवन करनेसे सब प्रकारका विष दूर होता है। इसके कई प्रयोग मैंने स्वयं देखे हैं। इस विषयमें शोधक लोक अधिक विचार कर सकते हैं। और उस ग्राममें रहकर विशेष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। विषवैद्योंको उक्त स्थान देखने लायख है।

(१३) इनाक्युलेशन।

बंबईके पास परलके रसायनभवनमें सर्पविषके ऊपर " सीरम् " तयार किया गया है। यह निश्चित गुणकारी है, परंतु यह उसी सर्पदंशपर उपयोगी होता है कि जिस जातीके सर्पका दंश होगा। अर्थात् सजातीय विष–सीरं सजातीय सर्पविषका शमन करता है अन्य जातीके सर्पदंशपर कोई उपयोग नहीं होता। अमेरिकामें ब्राझीलदेशमें सर्वसामान्य सर्पजातीके विष निवारणार्थ " सीरम " तयार किया है ऐसा सुनते हैं। इसका उपयोग करके अनुभव देखना चाहिये।

(१४) मंत्र तंत्र आदि।

मंत्र तंत्र आदिके विषयमें जो वेदवाक्य हैं वेह पूर्व स्थलमें दिये ही हैं तथा अनुभव का दृष्टांतभी दिया है। तथापि इस विषयमें निश्चयात्मक कुछभी कहा नहीं जासकता। क्यों कि इस बातका बहुत अनुभव हमनें नहीं लिया है।

दंशके तीन प्रकार पूर्व स्थानपर दिये ही हैं। पहिले दो प्रकारोंमें विष अंदर पहुंचता ही नही है। तीसरे प्रकारके दंशमें विष अंदर पहुंचता है। विचारणीय प्रश्न यहां यह है कि तीसरे प्रकारके दंश होनेकी अवस्थामें पूर्णतासे विष अंदर जानेके पश्चात् केवल मंत्र प्रयोगसे विष दूर हो सकता है या नहीं। जो मांत्रिक होते हैं उनका निश्चय है कि हरएक प्रकारके दंशसे अंदर गया हुआ विष केवल मंत्रप्रयोगसे दूर किया जा सकता है। तथापि हमारे तर्कसे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रयोग पहिले दो प्रकारके दंशोंके लिये ही उपयोगी है, तीसरे दंशके लिये नहीं है।

पहिले दो प्रकारके दंशोंमें शरीरमें विष जाता ही नहीं, परंतु विष अंदर जानेके संपूर्ण लक्षण दिखाई देते हैं। मनका कमजोर मनुष्य कल्पनासे विषबाधाका निश्चय मानकर मनमें विश्वास करता है कि अब अपना अंतिम समय है!! इस प्रकार मनके ही भयके कारण विषबाधाके सब लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकारके सर्पदंशोंमें मंत्रप्रयोगसे उसके मनकी शांति होती है और मन शांत होनेसे उक्त लक्षण दूर होते हैं।

इस विषयमें औंधके एक प्रतिष्ठित नागरिकका उदाहरण विचारणीय है। यह महोदय रात्रीके समय अपने कूवेपर गये थे। जानेके समय पांवको कुछ काटनेका अंदेशा हुआ और उस स्थानसे खूनभी आने लगा। उसने समझा कि यह सर्पदंशही है।

इस विश्वाससे उसको बडी अस्वस्थता प्राप्त होगई और चक्करभी आने लगे। तत्पश्चात् कारणविशेषसे यह निश्चय हुआ कि वह सर्प नहीं था परंतु एक वृक्षका कांटा था। इस बातका पता लगनेपर पूर्वोक्त लक्षण एकदम बंद हो गये ।।

इस प्रकारके दंश मंत्रादि प्रयोगसे ठीक हो जाते होंगे। तथापि इस विषयमें जितना विचार होना चाहिये उतना हमने किया नहीं है, इसलिये कुछभी निश्चयात्मक लिखना अशक्य है।

मंत्रके विषयमें कई विश्वसनीय लोक जो बातें सुनाते हैं, बडी अद्भुत होती हैं। (१) मंत्रके द्वारा काटनेवाले सर्पका आत्मा काटेगये मनुष्यके शरीरमें आविर्भावित कराकर उससे दंश करनेके कारण पूछे जाते हैं, (२) पश्चात् वही सर्प आकर दंशस्थानमें अपना मुख लगा कर सब विष चूस लेता है और इस प्रकार वह मनुष्य निर्विष होकर आरोग्य पाता है। इस प्रकारके कई कथा प्रसंग हमने विश्वास करने योग्य पुरुषोंके मुखसे सुने हैं। परंतु हमने प्रत्यक्ष कोई उदाहरण न देखनेके कारण इसकी सत्यासत्यता के विषयमें कुछभी कहना असंभव है। इसलिये यह विषय ऐसाही अधूरा छोड देता हूं। इसकी पूर्णता सुविचारी पाठक अधिक संशोधन करके कर सकते हैं।

(१५) मनुष्येतर प्राणीका सर्पदंश।

मनुष्येतर प्राणी गाय, भैंस आदिको सर्पदंश होनेपर वैसे ही

उपचार करने होते हैं जैसे मनुष्यके लिये किये जाते हैं, परंतु औषधकी मात्रा अधिक देनी होती है, इसका कारण स्पष्ट ही है।

(१६) सर्पोंसे बचाव।

चूहा, मेंडक, मुर्गीका बच्चा आदि खानेके लिये ही मकानमें सर्प आते हैं। इसलिये मकान ऐसे स्वच्छ और सुरक्षित रखने चाहिये कि उनमें चूहे आदि न हों। खिडकी आदिको वारीक जाली आदि लगानेसे बहुत उत्तम रीतिसे संरक्षण होता है। घरमें चूहेके बिल आदि हों तो बंद करना उचित है। मकानके पास उद्यान आदि हों तो उसको स्वच्छ रखना चाहिये। जो घर फिनाईलसे धोया जाता है उसमें सर्प प्रविष्ट नहीं होता। घरमें सर्प आगया हो तो उसपर अथवा उसके पास कार्बालिक आसिडके कुछ बूंद छिडका देने वह चले जाता है। उसके शरीरपर कार्बालीक आसिड गिर-नेसे वह मर जाता है। जिस कमरेमें वह होगा उसमें गंधक आदि पदार्थोंका तीक्ष्ण धूंवा करनेसे वह भाग जाता है, क्योंकि वह धूंवां नहीं सह सकता।

रात्रीके समय बाहिर जानेके समय पांवमें बूट तथा ऊपर बंडेजकी पट्टियां जैसी सिपाही बांधते हैं, बांधनेसे बडा बचाव होता है। अंधेरी रात्रीमें कंदील सोटी आदि साथ रखना उत्तम है। घंटीवाली सोटी हाथमें रखनेसे बडा आराम होता है क्योंकि सब सर्प घंटीकी आवाजसे दूर भाग जाते हैं। सर्पोंके प्रदेशमें जमीनपर

सोने की अपेक्षा चार पाईपर सोना अच्छा है। घरमें कुत्ता, नेवला आदि रखनेसे सर्पसे बचनेमें सहायता होती है।

(१७) सर्पका वध।

वेदमें सर्पका वध करनेका स्पष्ट उल्लेख है—

घनेन हन्मि वृश्चिकं
अहिं दंडेन आगतम् ॥
अथ. १०।४।९

" हथोडेसे मैं बिच्छू को मारता हूं। और आये हुए सर्प को-दंडसे मारता हूं " मन्त्रमें " हन्मि " शब्द " वध " का द्योतक है। हथोडेसे बिच्छूका वध करना चाहिये । हथोडे का तात्पर्य कोई चपटा पदार्थ समझना उचित है। जूतेके प्रहार से अछी प्रकार विच्छु मारे जाते हैं यह हमारा अनुभव है।

दंडेसे सर्पका वध करनेका उल्लेख ऊपरके मंत्रमें है।' अनुभव ऐसा है कि सीधे दंडेसे सापका वध करना कठिन है । हाकी की स्टिकके समान अथवा बेतकी गोल सोटी होती है जो पकडनेके स्थानपर अर्धचंद्रके समान होती है; उससे सापको ठीक प्रकार मारा जा सकता है। सोटी भी पतली नहीं होनी चाहिये परंतु डेढ इंच मोटी होनी चाहिये। वांस की सोटीकी अपेक्षा बेतकी सोटी अच्छी होती है। इसकी लंबाई सवा दो हाथसे कम न हो और अधिक लंबीभी न हो।

सर्पके ऊपर सोटी चलानेके समय यह सावधानी रखनी चाहिये कि उसका सिर और दूम छोड कर बीचके भागपर ही आघात लगे; कई लोग जो सर्पविद्यासे अनभिज्ञ होते हैं वे उसके सिरपर आघात करनेका प्रयत्न करते हैं। परंतु नागसर्प तथा सर्पजातीके प्राणी अत्यंत चपल तथा उनकी दृष्टि विलक्षण तीव्र होनेके कारण वे कभी अपने सिरपर आघात लेते नहीं। और यदि पहिला आघात गलत हुआ तो वह अवश्यही काटेगा। इसलिये सिरको छोडकर उसके बीचके शरीरपर ही ऐसा आघात करना चाहिये कि जिससे उसकी पीठ की रीढ टूट जाये। एक समय उसकी पीठकी रीठकी हड्डी टूट गयी तो फिर वह हिल नहीं सकता, तत्पश्चात् आप उसका सिर अच्छी प्रकार विदीर्ण कर सकते हैं।

सोटी का आघात करनेके लिये जिस हाथमें सोटी पकडी हो उसके दूसरे हाथमें एक और छोटी बारीक सोटी पकडनेसे बडा उपयोग होता है। आघात करनेके समय वह सर्प आघात करने वालेपर हमला करनेको आता है, उस समय बडी चतुरतासे वह छोटी बारीक सोटी उसके आगे करनी चाहीये। वह बारीक सोटी आगे होते ही उसपर धांवा करता है, इतनेमें सीधे हाथकी बडी सोटीसे उसके मध्यमें ऐसा आघात करना कि वह हतबल ही हो जावे। इसी प्रकार " कुटिल शत्रुको कुटिल नीतिसे मारना होता है। "

इस प्रकारके आघात के लिये कुठार आदि तीक्ष्ण शस्त्र ठीक नहीं होते। कुठार के आघातसे टूटा हुआ सर्पका मुख दौडकर पास

आकर ऐसा काटता है कि उससे बचना बडा मुष्किल है। इस समय क्रोधके कारण विष भी बहुतही गिराता है इसलिये बचना असंभव हो जाता है। यही कारण है कि सांपको शस्त्र की धारासे तोडना उचित नहीं प्रत्युत सोटीसे ठोकना योग्य है। वेदने भी इसी हेतुसे कहा है कि–

अहिं दंडेन आगतं [हन्मि]

अथ. १०।४।९

" सांपको दंडेसे मारता हूं। " इस लेख की सूचना अत्यंत उपयोगी है। वेद तलवार से सर्पका वध करनेकी सूचना नहीं देता, परंतु दंडेसे उसको मारनेकी सूचना देता है। इतनी सावधानी वेदके उपदेशमें है।

हाथसे सर्पको पकडना हो तो उसको एकदम दुमसे पकडना और दूरसे दूर हाथ करके झटका देना चाहिये। यह कार्य इतनी शीघ्रतासे होना चाहिये कि उसको काटने को समय ही मिलना नहीं चाहिये। अन्यथा वह निःसंदेह काटेगा। फणी सर्पको छोडकर अन्य सर्पको इसप्रकार पकडना अच्छाभी नहीं है, क्यों कि वे अवश्य काटते हैं। हमने कई लोक ऐसे देखे हैं कि जो एकदम चलते हुए सर्पका मुखही पकड लेते हैं, परंतु यह बडे धैर्यका कार्य है और इसमें खतरा भी अधिक है। कई लोक सर्पको एकदम दुमसे पकडकर चक्रवत् घुमाकर छोड देते हैं, इस प्रकार वह सर्प चक्रमें आकर जहां गिरजाता है मूर्छित होता है और पश्चात् मर जाता है।

पकडनेकी युक्ति और एक है कि उसके मुखपर सोटी रखकर उसकी दूम दूसरे हाथसे पकडनी, पश्चात् सोटी पांव आदिसे दबा कर रखकर सोटीके हाथसे मुख पकडना। इस रीतिसे जीवित सर्प पकड़ा जा सकता है। सर्प हाथसे पकड़नेके समय निम्न औषधिका उपयोग करना उत्तम है—

(१) पीली कणेरीकी मूली पानीमें घोलकर उसका लेप हाथोंको लगाना; अथवा—

(२) तमाखूका चूर्ण—नसवार—हाथोंके ऊपर मलना, अथवा—

(३) वचाका चूर्ण हाथोंपर मलना, अथवा—

(४) ओसवेनतीकी जडें चबाकर सर्पके मुखपर थूंकना, तथा एक टूकडा साधारण चबा हुआ उसके मुखके सामने रखना, मुखमें उक्त जड़के टुकड़े धरने, तथा अपने हाथ पर उनका रस अच्छीप्रकार मल देना। इसके उग्र वाससे सर्प मूर्च्छित होता है।

उक्त औषधोंमेंसे एक समय एक एक औषधका ही उपयोग करना चाहिये अन्यथा उनका गुण एक दूसरेसे मारा जाता है। इसके अतिरिक्त फिनाइल, कार्बालिक आसिड, तारपीण आदि उग्र गंधवाले पदार्थ हाथपर मलनेसे भी अच्छी सहायता होती है। तीक्ष्णगंधसे सर्प मूर्च्छितसा होता है, कार्बालिक आसिडका एक बूंद सर्पके मुखमें जानेसे वह मर ही जाता है। अस्तु। नाग पकड़नेके समय विषबाधाकी निवृत्तिके उपाय साथ रखने उचित

हैं अन्यथा यदि वह काटेगा तो पकडनेवालेकी ही अंत्येष्टि हो सकती है ।

किसी बिलमें सर्प हो तो बिलद्वारके पास रसीका पाश रखा जाता है और धूम आदिसे उसको बाहिर निकाला जाता है। इसप्रकार बाहिर आतेही रसी खींच कर पाशमें पकडलेते हैं। पकडनेके लिये लोहेके पाश भी होते हैं।

सर्पको पकडकर उसको मिट्टीके घडेमें रखकर घडेका मुख बंद करके किसी स्थानपर रखदेते हैं यह ठीक नहीं है। उसका वध करना इससे अच्छा है। उक्त प्रकार उसको बंदकरके रखनेसे अहिंसा नहीं सिद्ध हो सकती। नाग कई समय ऐसे कठिन स्थानमें रहते हैं कि वहां उनको मारना अथवा पकडना अशक्य होता है, ऐसी अवस्थामें बंदूकसे उसको मारना अच्छा है। छरोंसे अथवा बंदूकमें पानी डालकर उस पानीके द्वारा उसका वध होता है।

नागका वध करना हो तो पूर्ण रीतिसे उसका वध करना उत्तम है। उसको थोडासा छेड छाडकर छोड देना अच्छा नहीं है। थोडासा छेडनेसे वह उसका बदला लेता है। इसलिये उसको स्वयं छेडना नहीं, और अगर छेडना है तो उसकी पूरी समाप्ति करना उत्तम है।

कई लोक समझते हैं कि नागका वध करनेसे वह पिशाच अथवा भूत होकर कष्ट देता है, तथा संतति होने नहीं देता।

परंतु यह सब भ्रमही है । मेरे मित्रोंमें ऐसे कई मित्र हैं कि जिन्होंने सौ पचास नागोंका वध किया है परंतु कोई नाग पिशाच रूपसे उनके सिरपर आकर नहीं बैठा, और न उनको संतति होनेमें कोई बिघाड हुआ है। उनमेंसे एकको तो प्रतिवर्ष सुदृढ संतान हो रहा है तथा उनके सुपुत्र भी सर्पवध करनेमें बड़े महशूर हो गये हैं ! ! तात्पर्य यह कि उक्त कल्पना निर्मूल ही है।

सर्प और सर्पिणीका युग्म रस्सीके समान एक दूसरेसे चिपका हुआ होता है। इस अवस्थामें उनका वध करना कठिन है कदाचित् वे दोनों इतने क्रोधसे हमला करते हैं कि उनसे बचना कठिन है। इस अवस्थामें भाग जाना उचित है। यदि वध करना हो तो दोनोंका एकदम वध करनेका प्रयत्न करना चाहिये नहीं तो उनको छोडना ही अच्छा है।

खुले मैदानमें सर्प वध करना उत्तम है, परंतु मकानमें, ऐसे कमरोंमें कि जहां बहुत सामान भरा होता है, अथवा आदमी सोये होते हैं, रातका समय होता है, इत्यादि अवस्थाओंमें बडेही सोचविचारके साथ काम करना चाहिये। थोडीसी असावधानी बडा घात कर सकती है।

(१८) साधारण विचार।

(१) शहरोंमें अथवा घरोंमें आये हुए सर्पोंको जीवित रखना योग्य नहीं, तथापि जंगलोंमें जाकर उनका संहार करना भी आवश्यक नहीं है।

(२) नाग अथवा सर्प विनाकारण हमला नहीं करता, क्योंकि वह मनुष्यसे डरता है।

(३) वह मनुष्यके समान वेगसे भाग नहीं सकता, इसलिये मनुष्य दौडकर उससे अपना बचाव कर सकता है।

(४) सर्पके मध्य शरीरपर एक ही आघात करनेपर वह इतना निर्बल होजाता है कि वह कुछभी कर नहीं सकता।

(५) दो चार सर्पोंका वध करनेके पश्चात् सर्पोंकी भीति कम होती है और आत्मविश्वास बढता है।

(६) अपने धैर्यसे संततिभी धैर्ययुक्त होती है। विशेषतः स्त्रियोंको सर्पविद्यामें प्रवीण करना चाहिये क्योंकि शूर पुरुषोंके अभावमें स्त्रियां अधिक भयभीत होतीं हैं।

(७) सर्पवधसे परोपकार होता है।

(८) अपने हिंदुस्थानमें प्रतिवर्ष तीस पैंतीस हजार लोक सर्प-दंशसे मर जाते हैं, यदि सर्पविद्याका प्रचार होगा तो इतने मनुष्य बच सकते हैं।

(९) बहुधा अनेक स्थानोंमें सर्पवध के लिये इनाम दिया जाता है, इतनी इसकी आवश्यकता सरकारको और जनताको प्रतीत होगई है।

इसलिये इस विद्याकी उपयुक्तता निश्चित है। विद्वानोंको आवश्यक है कि वे सर्पविद्याकी बातोंको संगृहित करें और उनका प्रचार करें, जिससे जनताके ऊपर बडा भारी उपकार हो सकता है।

(१९) अहिंसा।

पाठक पूछेंगे कि वेद प्राणिवध करनेकी आज्ञा क्यों देता है। भूत-दयाका उपदेश करना धर्मका काम है। इस विषयमें इतनाही कहना है कि वेद तो सबको—

मित्रस्याहं चक्षुपा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुपा समीक्षामहे ।

य. अ. ३६।१८

" मित्रकी दृष्टिसे मैं सब भूतोंका निरीक्षण करता हूं । हम सब परस्पर मित्रदृष्टिसे देखें " इस प्रकार मित्रदृष्टिसेही व्यवहार करनेका उत्तम उपदेश दे रहा। सब भूतमात्र अथवा प्राणिमात्रका मित्र बनकर अहिंसाके स्वभावसे संपूर्ण व्यवहार करना, यही अंतिम आदर्श वेदका है।

" मनमें अहिंसाकी पूर्णतासे स्थिरता होनेपर उसके सन्निध सब प्राणी अपना वैरभाव छोड देते हैं " यह भगवान पतंजली महाराजजीका कथन सर्वथैव सत्य है । मित्रदृष्टिका यही फल है। जो मित्रदृष्टिसे युक्त बनेगा वह निःसंदेह विश्वमित्र किंवा विश्वामित्र बन सकता है, और उसकी कृपादृष्टिके छत्रमें रहते हुए सिंहव्याघ्रादिक पशुभी अपना वैरभाव छोड कर अहिंसक बनते हैं ! ! यह सब सत्य है, परंतु इतना अधिकार हरएक को प्राप्त होना कठिन है। इसलिये करोडों मनुष्योंमें एखाद आदमी इस

प्रकार अहिंसा शील बन सकता है; परंतु यह अहिंसाका व्रत सबके लिये आदर्श रूप रहना चाहिये इसमें कोई संदेह नहीं है।

इतना होनेपरभी हरएक मनुष्य अहिंसामय बनेगा ऐसा; नहीं हो सकता। इन साधारण लोकोंको किस प्रकारका आचरण करना चाहिये ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। जो उक्त प्रकारके अहिंसाशील संत होंगे उनके पास विषसर्प भी विषहीन बनेगा; परंतु अन्य जनताके पास वैसी शक्ति नहीं होती, इसलिये अन्योंके पास विषसर्प आगया, तो क्या करना चाहिये यही यहां प्रश्न है। इसका उत्तर वेदने दिया है कि "उसको दंडेसे मार दो" और अपना स्थान सर्पके उपद्रवसे रहित रखो।

भगवान योगिराज श्रीकृष्ण चंद्रजीनें भी कालिया आदि सर्पोंको इसी कारण मृत्युके पास भेज दिया था और वहांकी जनताको सुखी किया था। इस हेतुसे सामान्य अवस्थामें सर्पवध एक रीतिका परोपकार ही है। अस्तु।

(२०) अंतिम कथन।

"वैदिक-सर्प-विद्या" के नामसे जो यह निबंध लिखा है वह बहुत दृष्टिसे अपूर्ण है। वैदिक कालकी जो सर्प विद्या थी वही इस लेखमें आगई है ऐसा मेरा कथन नहीं है। तथा सर्पविद्याके विषयमें आर्ष और अनार्ष वैद्यक ग्रंथोंमें जो ज्ञान है वह भी इस में संपूर्ण रीतिसे संगृहित नहीं हुआ है, इसलिये इसमें त्रुटियां बहुतही हैं।

इन त्रुटियोंके अतिरिक्त वैदिक शब्दोंका पूर्णज्ञान न होनेके कारण तथा कई मंत्र अभीतक संदिग्ध रहनेके कारण जो दोष इस लेखमें हो गये हैं, वेभी बहुत ही होंगे।

इतने दोष होनेपर भी यह लेख लिखनेका साहस किया है। इसका हेतु इतनाही है कि इस विषयमें मेरेसे अधिक विद्वान् प्रयत्न करें और इस सर्पविद्याको परिपूर्ण बनावें। जिस देशमें सर्प होते हैं वहां इस विद्यासे अनंत लाभ हो सकते हैं। अपनेही देशमें प्रतिमास दो तीन हजार मनुष्य सर्पदंशसे मरजाते हैं। इस विद्याका प्रचार होनेसे इतनी मृत्युकी संख्या कम हो सकती है। आशा है कि विद्वान और ज्ञानी वैद्य इसका अधिक विचार और इसकी अधिक पूर्णता करेंगे।

सर्पकी प्रत्येक जातिका अलग अलग विचार होना आवश्यक है, इसप्रकार करनेसे सहस्रपृष्ठोंका ग्रंथ हो सकता है। वैदिक मंत्रोंके सर्पविषयक शब्दादिकोंके अर्थोंकी खोज होनी चाहिये। केवल व्याकरण, निरुक्त, तथा यौगिक अर्थोंकी सहायतासे कुछभी बोध नहीं होता है, इसलिये संपूर्ण सर्पजातियोंका सूक्ष्म निरीक्षण करना और उस ज्ञानसे अर्थनिश्चय करना चाहिये। मुझे पूर्ण आशा है कि ज्ञानी लोक इसका अधिक विचार करके इस विद्याकी पूर्णता करेंगे।

विषयसूची ।

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग। प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षाके लिये। मू. -) एक आना (तृतीयवार मुद्रित)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म-शिक्षाके लिये। मू. =) दो आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षाके लिये। मू. ≡) तीन आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ≡) तीन आने।

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।) चार आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ≡) तीन आने। („)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।) चार आने। („)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥) आठ आने। („)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥) आठ आने। („)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥) आठ आने („)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥) आठ आने। („)

[७] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

(२) गो-पथ-बोधामृत। (छप रहा है)

वैदिक-धर्म।

"वैदिक धर्म" पूर्णतया उत्साहका धर्म है। मूल वेदमंत्रोंमें जो स्फूर्ति और उत्साह है, जो आशावाद और बल संवर्धनका भाव है, जो निरुपम तेजस्विताका विस्तार करने और आत्मगौरव बढानेवाले उपदेश हैं उनका प्रकाश होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये चिरकाल लाभ देनेवाले स्वधर्म बोधक लेखोंको ही इस मासिकमें स्थान दिया जाता है।

इस मासिकका आकार क्रौन १६ पेजी है और प्रतिमास ४८ पृष्ट दिये जाते हैं। बारह अंकोंका वार्षिक मूल्य डाकव्यय समेत ३॥) साढे तीन रु० है। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु. है।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा).